UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180665
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82 A94M Accession No. F. G. H1274

Author अवस्थी, सद्गुरुशरण.

Title मुद्रिका. 1953.

This book should be returned on or before the date last marked belc

मुद्रिका

[एकांकी नाटक]

लेखक

सद्गुरुशरण अवस्थी

विश्वविद्यालय प्रकाशन

गोरखपुर

प्रकाशक,
पुरुषोत्तमदास मोदी, एम० ए०,
विश्वविद्यालय प्रकाशन
गोरखपुर

द्वितीय-संस्करण, १०००
जुलाई १९५३
मूल्य--डेढ़ रुपया

मुद्रक,
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, बनारस।

दूसरा संस्करण

आज से ठीक दस वर्ष पूर्व यह एकाकी नाटक प्रकाशित हुआ था। मेरे एकांकी नाटकों में यह कदाचित् तीसरा नाटक है। मेरे कुछ अत्यत निकट मित्रों ने इस नाटक को रूखा और चिंतना का कोरा प्रयोग कहा है। इसमें सरसता का नितांत अभाव है। उनका कथन है कि इसकी वस्तु समस्या-मूलक तो है पर उसमें घुलावट बिलकुल नही है। दूसरे प्रकार के मित्रों ने इसकी विचार परम्परा और वस्तुगुम्फना की काफी प्रशंसा की है और उसे एक उत्तम दार्शनिक देन कहा है। उनका मत है कि चिंतना को रमण करने के लिये इसमें पर्याप्त रस है। इसके लम्बे-लम्बे बोझीले तत्सम शब्दों वाले वाक्यों मे उन्हे सरस विचार धारा और मनन साध्य सामग्री दिखाई दी है। दोनों ही प्रकार के समीक्षक मेरे सगे और मुझे प्रिय है। वे मेरी उन्नति की कामना करते है। मुझे तो दोनों ही पक्ष में सत्य दिखाई देता है।

यह नाटक फिर आप के समक्ष है।

सद्गुरुशरण अवस्थी

एकांकी नाटक

भारतीय साहित्य के आचार्यों ने काव्य को दृश्य और श्रव्य दो भागों में विभक्त कर रखा है। नटो द्वारा रूपक-प्रदर्शन, नटों की मुद्रा, उनकी भाव-भंगी, उनके कंठ की सरसता और उच्चारण पटुता, उनका समस्त निदर्शन, दृष्टि के प्रयोग की अधिक अपेक्षा रखता है। अतएव नाटकों को दृश्य-काव्य के वर्ग में स्थान मिला। उच्चारण कुशलता और संगीत सौष्ठव कर्णेंद्रिय से संबंध अवश्य रखते है परंतु संवादकों की अंग-परिचालना और गायकों की भाव भरी मुद्रा की विशेषता होने के कारण अभिनय सौदर्य का आगमन नेत्र ही द्वारा विशेष प्रकार से होता है। यही कारण आचार्यों के समक्ष रहा होगा जिसकी प्रेरणा से नाटकों को दृश्य काव्य माना गया।

नाटकों से इतर अन्य काव्य को श्रव्य काव्य क्यों संज्ञा दी गई इस पर भी विचार कर लेना है। कदाचित् अन्य सब प्रकार के काव्य को लोग परस्पर सुना-सुनाया करते थे। लिपि-बद्ध करना कष्ट साध्य था। एक प्रति कवि ने लिख ली और उसे अपने मित्रों के बीच बैठ कर वह सुनाया करता था। एक पढना होगा, बहुत से लोग सुनते होंगे। नाटकों को पढ कर सुनने-सुनाने की परिपाटी न होगी। नाटक-कार अपनी कृति की नवलता रक्षित रखने के लिये प्रदर्शन के पूर्व उसका प्रकाशित होना कदाचित उचित न समझता होगा। सुनने के बाद उसी कृति को रंग-मंच पर देखने की रुचि का मंद पड जाना स्वाभाविक ही है। परंतु अन्य प्रकार के काव्यों के रसास्वादन करने का कोई दूसरा उपाय ही न था। कृतिकार जब सुंदर कंठ और सरस संगीत के साथ अपनी कृति सुनाता होगा

तो उसके काव्य का प्रभाव दुगुना हो जाता होगा। पुस्तको की प्रतिलिपि करना सरल न था; और फिर आज की भाँति उसकी इतनी प्रतियाँ तो मिल ही न सकती होंगी कि प्रत्येक साहित्य रसिक अपने घर के विश्रामासन पर लेटा-लेटा धीरे-धीरे बड़े मनोयोग के साथ काव्य का रसास्वादन कर सके। शास्त्रो और काव्यो का बहुत बड़ा भाग मौखिक रहता था। गुरु परपरा की देन से ही उसकी रक्षा होती थी। यही कारण है कि नाटक साहित्य के अतिरिक्त समस्त काव्य श्रव्य-काव्य की शरण आ गया।

आचार्यो का अनादर न करते हुए भी यह नि.सकोच कहा जा सकता है कि काव्य का यह भेद नितात स्थूल है। किसी इद्रिय विशेष का अकेला सहारा कभी भी किसी सौदर्य को मन तक नही पहुँचा सकता। मन पर प्रत्यक्षी-भूत-सौदर्य समस्त इद्रियों का संकुलित सदेश होता है। अशेष के साथ शेष का संपर्क शेष के उपकरणों के समाहार प्रयास द्वारा ही मुकुलित होता है। किसी भी वस्तु के साथ इद्रियों का स्पर्श प्रत्येक ज्ञानेद्रिय में प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। उनमें हलका अथवा तीव्र प्रकंपन होता है। तद्जनित विकारानुभूति ही ज्ञान है। ये ज्ञान सामान्य ओर विशेष दो रूपों मे आकुलित रहते है। मनोहर कहने से व्यक्ति विशेष का आकार उसकी बोली, उसकी मनुहार आकृति के चेचक के चिह्न उसके वस्त्रों की गंध, सभी मूर्त्त और अमूर्त्त गुणों का ध्यान आगे पीछे आ सकता है। यह ज्ञान हमारी भिन्न-भिन्न इद्रियों ने अतरित किया है और मनोहर का व्यक्तित्व-निरूपण आभ्यतर में हो गया है। सजग, असजग अथवा अर्ध सजग किसी भी अवस्था मे यह मानसिक क्रिया सपन्न हुई है। यह व्यक्तित्व केवल दृश्य-पथ अथवा श्रवण-पथ का अकेला अथवा सम्मिलित परिणाम नही है। इसके निर्माण में अन्य इंद्रियों का भी योग है।

यह ठीक है कि किसी वस्तु विशेष के अभिधान में किसी इद्रिय विशेष के ज्ञान की अधिक सजग प्रेरणा रहती है तथा उस नाम के उच्चारण करते ही उसी इंद्रिय में सबसे पहले प्रकंपन होता है और उसका ज्ञान

सबसे पहले आ जाता है। मखमल अथवा नवनीत स्पर्शेंद्रिय को प्रकंपित करता है। गुलाब से घ्राणेंद्रिय सजग हो जाती है। कोयल से श्रवणेंद्रिय खिच जाती है। हाथी से नेत्र आकर्षित होते है और मिरच से स्वादु इंद्रिय मे जल भर आता है। इसका यह अभिप्राय नही कि मिरच अथवा कोयल का आकार नेत्र नही पहचानते, नवनीत का स्वाद जिह्वा को नही मालूम अथवा मखमल की नितांत धीमी चरमराहट से कान अनभिज्ञ है। सामान्य ज्ञान में यही अपने-अपने ऐंद्रिक ज्ञानों की विषय संकुलता रहती है। मनुष्य कहने पर प्रत्येक व्यक्ति का मनुष्य, कुछ सामान्य-गुणों से भरा-पूरा, पर फिर भी ध्याता की व्यक्तिगत विशेषताओं से आपूरित, ध्यान मे आ जायगा। किसी का मानव गौर वर्ण का होगा, किसी का साँवला, किसी की नाक भारी होगी, किसी की चपटी। कहने का अभिप्राय यह है कि चाहे विशेष ज्ञान हो चाहे सामान्य ज्ञान, उसके प्रत्यक्ष करने में जो रूप समक्ष आता है वह समस्त इंद्रियो की सकुलित देन है, एक की नही।

इसी प्रकार दृश्य-काव्य का नाम भी भ्रामक ही है। अभिनय का रसास्वादन भी कई इंद्रियों की सम्मिलित सहायता से हो पाता है, केवल नेत्र ही सब कुछ नही है। स्फूर्ति पूर्ण संवादों और रसीली गद्य अथवा पद्य की पंक्तियों में जो काव्य पकड़ा गया है, वही तो काव्य का बड़ा भारी अंश है। सुंदर नट अथवा नटी, उसका पतला कठ, उसकी भड़कीली वेशभूषा, उसके संगीत की सूक्ष्म गति, कथोपकथन का लहजा, बोलने का कृत्रिम झटका, दृश्यों की सजावट इत्यादि—इन सब बातों से काव्य का कोई संबंध नही है। कभी-कभी तो इन प्रदर्शनों की अतिरंजना काव्य के वास्तविक रूप को समझने में बाधा उपस्थित कर देती है। अतएव 'दृश्य काव्य' कहे जानेवाले काव्य में दृश्यत्व का जितना भाग रहता है वह वास्तव में काव्य ही नहीं हैं। अस्तु, यह स्पष्ट है कि दृश्य और श्रव्य का विभाजन बिल्कुल अस्वाभाविक है। योरुप के समीक्षको ने ऐसा कोई वर्गीकरण नहीं किया। वहाँ काव्य के जितने विभेद माने जाते है उन सब की

आकार बोधिनी विशेषताओं की व्याख्या हुआ करती है। काव्य के अर्थ में साहित्य का प्रयोग वहाँ और यहाँ दोनों स्थानों पर होता है। भारतवर्ष के साहित्य विभेद कुछ तो पुराने है और कुछ विदेशियों के संपर्क से स्पष्ट हुए है।

भारतवर्ष में नाटकों की प्राचीनता निभ्रांत रूप से सिद्ध है। ऋग्वेद में इसके रूप मिलते है। यज्ञ के समय नाटक हुआ करते थे। देवताओं के समक्ष नाटक खेले जाते थे। अग्नि पुराण में भी नाटकों की चर्चा है। विदेशियों के सपर्क ने नाटकों के रूप में परिवर्त्तन भी किया है। यातायात की त्वरा ने विश्व को काफी सिकोड दिया है और हमलोग और विषयों की भाँति साहित्य में भी परस्पर प्रभावित हुए है। एकांकी नाटकों का नया रूपरंग अवश्य ही योरोपीय है। पर इससे यह न समझना चाहिये कि भारतवर्ष में एकाकी नाटक थे ही नही। जैसे योरुप में एकांकी नाटकों का पहले एक दूसरा ही रूप था, अब दूसरा ही है, वैसे ही यहाँ भी हुआ है। एकांकी नाटको के प्राचीन रूपों के नाम और व्याख्या लक्षण ग्रंथों में बराबर मिलती है। 'भाण' एकाकी नाटक है। इसका मुख्य उद्देश्य परिहासपूर्ण धूर्तता प्रदर्शन करना है। 'व्यायोग' में भी एक ही अंक होता है। इसमें पुरुष पात्रो की बहुलता होती है। 'अंक' भी एकांकी नाटक है। इसका करुणरस निश्चित रस है। इसके नायक और नायिका साधारण व्यक्ति होते है। 'वीथी' में भी एक ही अंक होता है। 'प्रहसन' में भी कभी-कभी एक ही अंक रखने की परिपाटी देखी गई है। उपहास पूर्ण ढंग से व्यंग पूर्ण भाषा में यह लिखा जाता है। 'गोष्ठी' भी एकांकी नाटक है। इससे स्त्री-पुरुष पात्र साधारण व्यक्ति होते थे। 'नाट्यरासक' भी एकांकी नाटक है। 'उल्लाप्य', 'काव्य', 'प्रेषण', 'रासक', 'श्री गदित' तथा 'विलासिका' ये सब अपनी-अपनी विशेषताएँ रखते हैं, पर सब एकांकी नाटक है। परंतु आज के एकांकी नाटकों का इनसे कोई विशेष साम्य स्थिर नही किया जा सकता।

योरोपीय साहित्य में एकांकी नाटक का इतिहास और उसकी प्रगति अपना एक विशेष महत्व रखती है। एकांकी नाटक के स्वतंत्र अस्तित्त्व की घोषणा सबसे पहले इटली में कमेडिया—डेल—अर्टी में दिखाई देती है। मिस्ट्री मिरेकिल तथा मोरलटी प्लेज भी अधिकांश मे एकांकी होते थे। पद्रहवी और सोलहवी शताब्दी के ये एकांकी नाटक कथानक की सक्षिप्तता और विषय के एकाकीपन के लिये ख्यात थे। एलिजवेथ के युग में बडे-बडे नाटकों के वीच में गर्भाक के रूप में भी एकांकी नाटकों की अवतारणा हुई है। इनका अभिप्राय प्रमुख नाटको की गति मे थोड़े काल के लिये विश्राम उपस्थित करना और दर्शकों के लिये एक भिन्नरस (हास्य) उपस्थित करके मनोरंजन करना था। इसी प्रकार विषादात अभिनयों के बोझीले प्रभाव को हलका करने के लिये प्रधान नाटक के अत मे 'आवट्र पीसेज' नामक एकांकी नाटकों का अभिनय हुआ करता था। ये एकांकी नाटक भी किसी हास्यपूर्ण सामग्री को लेकर अच्छा विनोद उपस्थित करते थे। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी में यह व्यवस्था वराबर पाई जाती थी। इसीके साथ 'कर्टन रेजर' के रूप में भी एकांकी नाटक खेले जाते थे। ये भी मनोरंजनपूर्ण ही होते थे और हास्यरस उत्पन्न करना इनका भी काम था। इनका उद्देश्य बडे अभिनय के आरंभ होने के पूर्व दर्शकों को किसी न किसी मनोरंजन में लगाए रहना था जिससे नाटक के प्रारभ होने तक वे ऊब न उठें। विक्टोरियन युग मे इनका बहुत चलन था। परतु आजकल के एकांकी नाटकों से इनका कोई विशेष संबध नही है।

योरुप के अभिनय जगत में एक प्रतिक्रिया हुई। धीरे-धीरे पश्चिम का नाट्य साहित्य यथार्थता की ओर बढ़ने लगा। पुरानी अभिनय परिपाटी, पुराने प्रसिद्ध नट, पुराना काव्यमय कथोपकथन, पुरानी परिपाटी की गंभीर कथा-वस्तु, पुराना रंगमंच सबकी ओर से प्रतिक्रिया हुई। इस प्रतिक्रिया के प्रेरक 'इबसेन' और 'पिनेरो' प्रसिद्ध है। इबसेन के सोसाइटी नामक नाटक में अभिनय-संकेतों की ही प्रधानता है। दृश्य-प्रदर्शन को गौण स्थान दिया गया है। इबसेन ने एक बात और यह की कि तुकबंदी का बहिष्कार करके ठेठ

गद्य में लिखा। केवल नेत्रो का मनोरंजन करनेवाले दृश्य, तड़क-भड़कवाले प्रदर्शन इनके नाटको मे न मिलेगे। उन्होने स्वगत और बिलग दोनो ही परिपाटियो को अस्वाभाविक समझकर छोड़ दिया है। दैनिक जीवन की सुंदर झाँकी उपस्थित करना उनका प्रमुख ध्येय रहा है। नैतिक और सामाजिक समस्याओं के प्रति युग की क्या प्रतिक्रिया है और समसामयिक उत्पीड़न की क्या रूप-रेखा है यह इबसन और उनके साथियों में प्रचुर मात्रा में मिलेगा।

यही नही स्वयं अभिनय मचों में विप्लव हुआ। रेपेर्टरी-थियेटर्स की सृष्टि वास्तव में लबे-लबे पुराने खेलों के प्रति प्रतिक्रिया समझनी चाहिये। बड़े बोझीले साहित्यिक नाटक तथा ख्यातनामा पुराने नटों के प्रति विरोध की भावना जाग उठी थी। ध्यान टिकट की बिक्री से हटकर यथार्थ अभिव्यजना की ओर अधिक लगने लगा था। व्यवसायी कंपनियो और नटों को छोड़ कर शौकीन नागरिकों की अभिनय पटुता की ओर लोगो की रुचि अधिक खिचने लगी। योरुप के एकाकी नाटकों के वर्तमान रूप का सूत्रपात भी इसी समय से होता है। समाज के सामने सामाजिक समस्याओ का व्यगपूर्ण चित्र रखना और उसका मनोरजन करना इनका काम था। ऐसे एकाकी नाटकों में विशप महोदय का कैंडिलस्टिक प्रसिद्ध है। उसकी रचना जन-साधारण के मनोरंजन के लिये हुई है। शैर्प महोदय ने अपनी भूमिका मे छोटे बच्चों के लिये अभिनय योग्य एकांकी नाटकों की चर्चा की है।

आज की योरोपीय एकांकी नाटकों को भी कला और साहित्य की वर्तमान प्रगति का अग समझना चाहिये। पुराने आदर्श और पुरानी परिपाटी के ध्वस मे ही इनके वर्तमान रूप का निर्माण हुआ है। डी० एच० लारेंस तथा सिटवेल इत्यादि को घोर प्रतिक्रिया वादी कहा जा सकता है। इप्स्टीन के सदृश कला की नई गतिविधि के प्रदर्शक भी इसी प्रेरणा के अंतर्गत आते है। उपन्यासों के आकार से ऊब कर लोगों ने आख्यायिकाओ को अपनाया, बड़ी-बड़ी जीवनियों से ऊब कर लोगों ने छोटी-छोटी प्रभावापन्न

जीवनियाँ तैयार की और बोझीले रसवाले बड़े-बड़े नाटकों से ऊबकर लोगों ने एकांकी नाटकों को प्रोत्साहन दिया। यही नहीं, वस्तु में भी आदर्श की उद्‌भावना की प्रतिक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। बर्लिबा में नायक को ही विरूपित कर डाला गया है। यह एक गद्य काव्य है। मिनी, वेगेट, गार्ल्सवर्दी, डन्सेनी बेल, जार्नाड्कवाटर इत्यादि साहित्यकारों को पढ़ने से ये विचार दृढ हो जायेंगे। इनके एकाकी नाटकों में कहीं-कहीं पर केवल एकही दृश्य रहता है कहीं कहीं पर एक से अधिक। पटक्षेप अंत में ही आता है और छोटी मध्य यवनिका बीच में भी गिर जाती है।

कभी-कभी यह प्रश्न सामने आ जाता है कि दर्शकों की रुचि नाटकों के निर्माण में प्रबल होती है अथवा नाटकों का प्रभाव दर्शकों की रुचि परिवर्तन में योग देता है इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं। वास्तव में दर्शकों और नाटकों का अन्योन्याश्रित संबंध है। यह ठीक है कि अंग्रेजी के नाटककार बर्नार्डशा अपने दर्शकों का स्वयं निर्माण करते हैं परंतु साधारणतया योरुप और भारतवर्ष दोनों ही में अधिकांश नाटकों की सृष्टि रंगमंच की रुचि परितुष्टि के अनुकूल होती है। एकांकी नाटकों के विषय में भी यही बात है।

यूनान के नाटक, शेक्सपीयर के नाटक, संस्कृत के नाटक, हरिश्चंद अथवा डी० एल० राय के नाटक अधिकांश में लंबे हैं। उनके अभिनय में सारी रात का झमेला रहता है। आजकल के व्यस्त जीवन के संघर्षमय वातावरण में फेनिल-मुख दौड़ने से हमें अवकाश बहुत कम मिलता है। हम अपने उलझे जीवन में से यावद् किंचित विश्रांति उपलब्ध करने के लिये कुछ क्षण सुलझाकर मनोरंजन भी कर लेते हैं। बस, इस युग के एकांकी नाटकों की सृष्टि का सबसे बड़ा कारण यही है। पुराने एकांकी नाटकों की प्रेरणा में और कारण थे जिनका संकेत किया जा चुका है। आजकल तो बड़ी रात तक बैठकर बड़े-बड़े अभिनयों के रसों में डूबने और उतराने में जो एक गहरी भावुकता का बोझ पड़ जाता है उससे हमारी नसें थक जाती हैं। हमारा आज का जीवन, मन से, विचार से, तथा कला पारखी की

दृष्टि से पूर्णरूप से नागरिक हो रहा है जहाँ वस्तुओं के नित-नये प्रयोग के साथ कला का भी नित नया रूप सामने आता रहता है। हम कला की परंपरावाली, मन उबा देनेवाली परिपाटी कभी भी अधिक काल तक स्वीकार नही कर सकते। दीर्घकाय नाटकों के लंबे-लंबे कथोपकथन उनकी भद्दी अभिव्यंजना, दृश्यों की सजावट की अतिशयता, विषयातरता, तथा वर्णन वाहुल्य, कथा-विकास तथा चरित्र विकास की लपेट में काव्य विकास का लम्बा प्रयोग, औत्सुक्य प्रधानता के लिये एक उलझी कल्पना ये सब बातें युगो से सबको परेशान किये है। एकाकी नाटक मे हम इनकी छाँह भी देखना पसंद नही करते।

एकांकी नाटक का सुनिश्चित और सुकल्पित एक लक्ष्य होता है। उसमें केवल एक ही घटना परिस्थिति अथवा समस्या प्रबल होती है। कार्यकारण की घटनावली अथवा कोई गौण परिस्थिति अथवा समस्या के समावेश का उसमें स्थान नही होता। एकांकी नाटक के वेग संपन्न प्रवाह में किसी प्रकार के अंतर प्रवाह के लिये अवकाश नही होता। वह तो समूचा ही केंद्रीभूत आकर्षण है। उसके रूप मे परमता और उत्कर्षता सर्वत्र ही बिखरी रहती है। विवरण शैथिल्य उसका घातक है। कथावस्तु, परिस्थिति, व्यक्तित्व इन सब के निदर्शन में मितव्ययता और चातुरी का जो रूप अच्छे एकाकी नाटकों में मिलता है, वह साहित्य कला की अद्वितीय निधि है। आकार का केंद्रीकृत प्रभाव तथा वैयक्तिक और स्थानिक विशेषताओं की केवलता एकांकी नाटकों को कही अधिक सुंदर बना देती है। पुराने नाटकों के कथानक की मुहावरेबाजी और गति तथा वाक्चातुरी की दरबारी-त्वराबुद्धि के स्थान पर तार्किक मौलिकता, निष्पक्ष समीक्षा और विषय प्रतिपादन की निष्ठा आज के एकाकी नाटकों में अधिक आवश्यक है। अभिव्यंजन में भावुकता के स्थान पर मानसिकता पर अधिक बोझ पड़ना चाहिये। इस प्रकार से वास्तविकता की गाढ़ी पकड़ में कला की गति यदि आगे बढ़ेगी तो एकांकी नाटक अच्छा होगा।

एकांकी नाटक का विषय कुछ भी हो सकता है। राजारानी की कहानी से लेकर, जातक कथाएं, हितोपदेश, तथा पचतत्र की कहानियाँ, फेरी टेल, सहस्र रजनी चरित्र इत्यादि इत्यादि सभी कथाएं समझदारी के साथ एकाकी नाटक मे गूँथी जा सकती है। अद्‌भुत कथाएं, साहस के आख्यान, जासूसी वृत्त, प्रेम तथा हत्या के प्रसग, हड़ताल, बाजार की उथल-पुथल, धार्मिक असहिष्णुता, राजनीतिक इन्कलाब, वैयक्तिक सनक, सामाजिक और मानसिक समस्याएं सभी एकाकी नाटक का विषय हो सकते है। आकाश के नीचे और क्षितिज के उस पार तक की अभिव्यजना हो सकती है। नाटककार को कुशल होना चाहिये। जीवन की वास्तविकता के एक स्फुलिग को पकड़कर एकाकी नाटककार अपने रेखाचित्र अथवा सुकुमार सक्षिप्त मूर्तिद्वारा उसे ऐसा प्रभावपूर्ण बना देता है कि मानवता के समूचे भाव जगत को झझना देने की उसमे शक्ति आ जाती है। केवल कतिपय उज्ज्वल पृष्ठों मे वह जीवन का जाज्वल्यमान खड उपस्थित कर देता है। एकाकी नाटक अनेकाकी नाटक का न तो सक्षिप्त सस्करण है और न उसका एक अक है। वह बलि को छलनेवाला बावन अगुल का मनुष्य नही और न चक्र सुदर्शन सहित विष्णु का हाथ है। वह न किसी का लघु सस्करण और न किसी का खड अवतार। वह अपनी निजी सत्ता रखनेवाला साहित्य का एक अग है। उसके अपनी निजी आत्मा है और उस आत्मा को व्यक्तीकरण का उसका निजी ढग है।

एक बात यह भी समझ लेनी है कि रगमच का नाटकों का सबध केवल आकार का संबंध है। नाटकों के अनिवार्य रूप से अभिनेय होने के जो पक्षपाती है, वे सहित्य रसिक न होकर केवल मनोरजन के उपासक हैं। साहित्य के सच्चे पारखी और रंगमंच के तमाशबीन दर्शकों में बड़ा अंतर है। साहित्य के अनेक अंगों में एकांकी नाटक भी एक अग है। उसकी सार्थकता साहित्य देवता की स्थापना पर अधिक है, अभिनय अनुकूलता पर उतनी नहीं है। यदि किसी एकांकी नाटक मे जीवन की ऊँची गति-विधि के साथ-साथ कला का पूर्ण स्वरूप और सच्चे साहित्य की सारी

आकांक्षाएँ विद्यमान हैं तो कोई सहृदय समालोचक इसलिए उसका अनादर न करेगा कि वह अनभिनेय है और नाटककार रंगमंच की एकांगी विशेषताओं से अनभिज्ञ है। हम उसे रंगमंच में न देखेंगे। पढ़कर तो आनंद ले सकते है।

एकांकी नाटकों में ही नही आजकल के समस्त साहित्य की सबसे बडी विशेषता ऊँची चितना का प्रवेश है। प्राचीन परिपाटी के साहित्य-रसिक दार्शनिकता के प्रवेश को काव्य के लिए घातक समझते है। उनका कहना है कि काव्य का प्रमुख लक्षण उसकी रसात्मकता होनी चाहिये। दार्शनिक विचारधारा के प्रवेश से काव्य का प्रभाव हृदय पर न पड़कर मस्तिष्क पर पडता है और वह भाव विभोरता में मस्त कर देनेवाली वस्तु न रहकर चिंतना की गुत्थी सुलझाने में उलझ जाती है। काव्य दर्शन ग्रथ हो जाता है। परंतु आज का युग तो चितनाओं के संघर्ष से ही प्राण ग्रहण करता है। उसके बिना नाटक ही क्या सारा काव्य ही केवल हँसने और रोनेवाली वस्तु रह जायगा। चिंतना को एकदम बहिष्कृत करनेवाले व्यक्तियों ने हृदय और मस्तिष्क की क्रियाओं का नितांत स्थूल भेद समक्ष रखकर निष्कर्ष निकाला है। रसविभोरक्षमता हृदय की वृत्ति है यह ठीक है, पर हृदय की यह सुषुप्त परिस्थिति जिसके काव्य द्वारा जागरित हो जाने से मस्ती का आनंद मिलने लगता है, प्राणी को कहाँ से मिलती है? इस प्रश्न का उत्तर हमें मनोविश्लेषण-विज्ञान की ओर ले जाता है। हृदय की समस्त वृत्तियों का निर्माण इसी संघर्ष-पूर्ण जीवन में ही होता रहता है। सजग मस्तिष्क की क्रियाओं, परिणामों और समन्वयों का वह भाग जो उससे फिसल कर अर्धसजग अथवा असजग परिस्थिति में पहुँच जाता है और सजग परिस्थिति के पहुँच के परे हो जाता है वही हृदय का भाव-कोष है। इसी को हृदय का वृति-समाहार कहेंगे। तादृश परिस्थिति से इसी हृदय की कोई परिस्थिति फिर सजग हो उठती है, स्पंदित करनेवाला उद्दीपन चाहे दृश्य जगत मे मिले, चाहे काव्य-जगत में। सुषुप्त-भाव परिस्थिति

अथवा अंतरहित राग का सहसा सजग होकर समस्त सजीव रूप का सहानुभूति से ओतप्रोत कर देने का नाम आनंद है।

जब आज की मानसिक क्रियाएँ अथवा चितना के सजग प्रत्यय ही कल हृदय के भाव अथवा राग में परिवर्तित हो सकते है तब हृदय और मस्तिष्क के बीच मोटी मेड़ खड़ी करना अतार्किक है। मानवता की रुचि विभिन्नता का कारण उसकी चितना के विकास का वैषम्य है। मूर्त्त और व्यक्त रूप व्यापारों से ऊपर उठकर अमूर्त्त अव्यक्त तथा अवच्छन्न रूप-व्यापारों में लीन होनेवाला हृदय विकसित चितना और समुन्नत सभ्यता का परिचायक है। अमूर्त्त रूप व्यापारों की निबंधना में चितना का प्रवेश स्वाभाविक है। सच्चा कवि जीवन की मार्मिक गुत्थियो का निर्देश ही नही करता, वह निसर्ग के सजग स्पदन को ही नही दिखलाता वरन् उन गुत्थियों के मूलझाव और निसर्ग के तिरोहित प्राण को भी स्पष्ट करने मे उसी तल्लीनता से चितना को पकड़ता है। सच्चे रसिक के लिये यह काव्य रूखा नही। उसकी भीतरी रुचि तो उसीमें लगा करती है। हृदय और मस्तिष्क का वह पूर्ण सोहाग पाता है। जिन व्यक्तियों को दार्शनिक कहा जानेवाला काव्य रूखा और नीरस प्रतीत होता है उन्हें अपनी बुद्धि की उन्नति द्वारा हृदय को परिष्कृत करना चाहिये। जितने ऊँचे स्तर से कवि ने अपनी कृति की सृष्टि की है उतने ऊँचे उठने का प्रयास करना चाहिये।

यह कहना कि जो कविता सीधे जाकर हृदय पर चोट नही करती वह कविता नही है, सत्य भी है और असत्य भी है। यदि हमारे हृदय का परिष्कार ही नही हुआ और ऊँची चितना को प्रवेश करने के लिये उसका द्वार प्रशस्त नहीं है, यदि हमारा हृदय व्यक्त रूप व्यापारों से ऊपर उठ कर अव्यक्त के साथ रमण करने का अभ्यासी नहीं है, यदि उसकी सहानुभूति यथेष्टरूप से व्यापक नही है, यदि वह अनुपम ध्वन्यात्मक उक्ति के व्यंग्यार्थ तक सहसा नही पहुँच सकता, यदि उसका अभ्यास ऊँची चितना की डोर पकड़े रहने का नही है, तो हमें व्यर्थ में किसी उक्ति पर यह दोष लगाना कि वह सीधे हृदय पर चोट नही करती अपनी मूर्खता का अपने

हाथों ढिंढोरा पीटना है। हाँ, काव्य सदोष कहाँ हो जाता है जहाँ कृतिकार बुद्धि के प्रत्यय का ऐसे तत्वों के साथ समीक्षा करने बैठ जाता है जो उसके हृदय मे पैठे नही है। उसके असजग अथवा अर्ध सजग रूप में तादृश परिस्थिति उत्पन्न नही हो पाई है, अतएव वह स्वय झकृत अनुभव नही करता। ऐसी अवस्था मे वह दूसरे के हृदय को भी स्पर्श नही कर सकता। वह वास्तव मे काव्य के नाम पर अपने से छल करता है। ऐसा व्यक्ति यदि अपनी निवधना द्वारा सहेतुक व्याख्या के रूप मे किसी तथ्य का स्पष्टीकरण करेगा भी तो वह केवल किसी दार्शनिक वाद की सृष्टि कर सकेगा काव्य की नही। विषय को सुलझा सुलझा कर, सरल छोटे-छोटे वाक्यों मे मस्तिष्क, प्रज्ञात्मक शैली के सोपान मे उर्ध्वगमन कर सकेगा, परतु मस्ती के पालने मे बिठाकर पैग नही लगा सकता। हृदय मे घुली मिली विचार धारा और चितना के न जाने कितने रंग-विरगे पख होते है। सच्चे कवि की कृति में नाना प्रकार की स्वतः निसृत उक्तियाँ उसी प्रकार एक के बाद एक सजती हुई चली जाती है जिस प्रकार नाचते हुए मयूर से रंग विरगे पंख। मयूर के पखो में विचित्र रंगों की रेखाएँ होती है और उन्हे समझ के प्रकाश में गिना जा सकता है पर मयूर नृत्य का दर्शक उन्हे गिनने कब बैठता है? मधुर नृत्य के साथ पखो का समूचा सौदर्य घुलमिल कर भीतर तूफान मचा देता है। कुशल कवि की उक्तियो की दार्शनिक चितनाएँ कौन खोलने बैठता है? उसकी कला के समूचे सौदर्य की ठेस रसिकों को तिलमिला देने के लिये पर्याप्त है।

प्रेम मंदिर, सद्गुरुशरण अवस्थी

कानपुर।

सितम्बर १५, १९३९

पुरुष पात्र

१—शंकुक—गृहपति
२—ओंकार—शंकुक का पुत्र
३—बादरायण—चिंता का पति, शंकुक का जामाता
४—सोहम—ओंकार का सबसे बड़ा पुत्र
५—ईश—ओंकार का मँझला पुत्र
६—रसमूल—ओंकार का सबसे छोटा पुत्र
७—योगिराज—उपदेश देनेवाला परिव्राजक
८—प्रधान शांतिरक्षक
९—सोहमवादी—सोहमवाद के अनुयायियों का नेता
१०—ईशवादी—ईशवाद के अनुयायियों का नेता
११—रसमूलवादी—रसमूलवाद के अनुयायियों का नेता

स्त्री पात्र

१—गोदावरी—शंकुक की पत्नी
२—चिंता—शंकुक की पुत्री
३—माया—ओंकार की पत्नी

———

मुद्रिका

एकांकी नाटक

******

प्रथम दृश्य

(सुरसरि का तट है। कई वृक्षों के झुरमुट में एक भव्य पर्णशाला है। पर्णशाला के आच्छादन पर कई बेलें प्रसरित हैं। आच्छादन के ऊपर की ओर के एक कोण से एक छोटी लौकी लटक रही है। पर्णशाला के द्वार पर ही, भीतर की ओर, एक चारपाई बिछी है। रुग्ण गृहपति एक करवट बाहर की ओर लेकर, बहती हुई गंगा को देखकर, नेत्र बंद कर लेता है। दूसरी ओर करवट बदल कर छोटे-छोटे कुशासनों पर बैठी हुई अपनी सजल नेत्रा पत्नी और उदास कन्या को क्षुब्ध कर देता है। चरणों के निकट पुत्र बैठा है। गृहपति का नाम शंकुक, गृहस्वामिनी का गोदावरी, पुत्र का ओंकार तथा पुत्री का चिंता है।)

शंकुक

(भर्राई हुई वाणी में)

तो अब अंतिम स्वाँस के पूर्व अंतिम उत्तरदायित्व सौंपना है। मेरे प्रिय उत्तराधिकारी, ओंकार ! मेरे निकट आओ।

गोदावरी

(रोती हुई)

आर्यपुत्र ! यह आप क्या कह रहे हैं ?

चिंता

(सिसकती हुई)

पिताजी.....!

ओंकार

(क्षुब्ध एवं गंभीर भाव से)

पिताजी ! धैर्य रखिये। आपके कारुणिक वचन हम लोगों को विचलित कर रहे हैं।

शंकुक

(उसी वाणी में)

मुझे बड़ा आनंद है। जिस धैर्य की शिक्षा मैं विश्व को दिया करता था, वह शिक्षा तुम आज देने योग्य हो गये। बेटा ! थोड़ा मेरे निकट और आ जाओ।

(ओंकार पिता के अत्यंत निकट पहुँच जाता है। पिता उसके मस्तक का घ्राण करता है और पीठ पर हाथ फेरता है।)

तुमसे एक बात अभी तक मैंने गुप्त रखी थी। मेरे पिता ने उत्तराधिकार में मुझे यह मुद्रिका प्रदान की थी।

(अपनी अनामिका से सुवर्ण मुद्रिका निकालकर ओंकार को देता है।)

आज से यह तुम्हारी संपत्ति हुई। अपनी अनामिका से इसे जीवन-पर्यंत पृथक् न करना।

ओंकार

(मुद्रिका हाथ में लेकर, अत्यंत कृतज्ञ भाव से)

इस अयोग्य पुत्र पर आपकी बड़ी दया है। परंतु यदि माताजी इसे पहनें तो ? अथवा प्यारी चिंता……।

गोदावरी

वत्स ! उत्तराधिकार तो हम दोनों का सम्मिलित निर्णय है। आर्यपुत्र के उत्सर्ग-संगीत में मेरा भी विसर्जन गान है। हाँ, और प्यारी चिंता…। उसकी उँगलियाँ अभी बहुत छोटी हैं।

शंकुक

(कुछ सम्हली हुई वाणी में)

इस मुद्रिका के असाधारण इतिहास से अभी तुम परिचित नहीं हो।

ओंकार

वह क्या है ? पिताजी !

शंकुक

मेरे जीवन की गति में तुम्हें कभी किसी आलोक-रश्मि के दर्शन हुए ?

ओंकार

तात-चरण का तो समूचा जीवन ही प्रकाश-पिंड था।

शंकुक

फिर भी !

ओंकार

लौकिक भाषा में, सफलता आपकी शरण में आकर अपने को धन्य मानती थी। आपकी वाणी में बुद्धि का परिष्कार और हृदय का उद्‌गार था। बिना दीक्षित विश्व आपका शिष्य था। दुनिया आपके पीछे चलने में अपना गौरव समझती थी। आप आस्तिक की 'हाँ' और

नास्तिक की 'न' तो थे ही, इन दोनों के परे संदिग्धवादियों की 'न' और 'हाँ' ी संदिग्ध-परिस्थिति भी थे। आप जनमत के पुंजीभूत मताधिकार थे।

शंकुक

(उसी वाणी में)

यह गौरव रुग्ण शय्या पर पड़े हुये इस विग्रह के कारण थोड़े ही मिला था। यह सब इसी मुद्रिका की ही अद्‌भुत कृपा है।

चिंता

(उत्सुक भाव से)

सो कैसे ? पिताजी !

शंकुक

(पुत्री के प्रश्न को अनसुना करके ओंकार के ही प्रति वाणी में सहसा उत्तेजना आ जाती है।)

वत्स ! विश्व में मानवता की श्रेष्ठतम विभूति का यह चिह्न है। विकास की होड़ में सृष्टि की बस्ती आगे-पीछे थी। उस समय साम्य-वाद को ठोकर देकर सबसे आगे पहुँचे हुए स्फुल्लिग ने तेज की अद्वि-ीय ेखा से इस जाज्वल्यमान मुद्रिका की परिधि बनाई और उसे धारण किया। उसकी अनामिका की यह शोभा उत्तरोत्तर उत्तराधिकारा-धीन ही रही। पूज्य पिता का दिया हुआ यह ओज का प्रतीक आज से तुम्हारी रक्षा करेगा।

ओंकार

पिताजी ! मैं वैसा अन्यतम पुरुष अपने को किस प्रकार समझूँ ?

शंकुक

(उसी वाणी में)

तुम्हारे पास का विश्व जानता है कि यह मुद्रिका उसी को मिलती ह जो उसका श्रेष्ठतम अधिनायक है। तुम्हारी अनामिका पर इसे देखकर वह स्वयं तुम्हारे पीछे दौड़ेगा।

चिंता

पिताजी ! यह अद्‌भुत मुद्रिका योग्यता-परिचायक है अथवा योग्यता-विधायक ?

गोदावरी

(रोष-भाव प्रदर्शित करती हुई)

चिंता ! तेरा अधिकार ऐसे प्रश्न करने का नहीं है ।

ओंकार

सो क्यों ? माताजी !

शंकुक

(कुछ खिन्न होकर)

यह ठीक है कि पुरुष-पुष्प स्त्री-वल्लरी का ही परिणाम है, परंतु विश्व को परिमल पुष्प ही दे सकता है। नेत्र का टिकाव वल्लरी की हरियाली भले ही थोड़े काल के लिए सम्हाल ले।

चिंता

(संकुचित होकर)

पिताजी ! आपने ओषधि नहीं ली ?

शंकुक

(डूबती हुई वाणी में)

बे···टी ! ···मैं···तो···अ···ब···।

(शंकुक अँगड़ाइयाँ लेकर मुँह बनाने लगता है। उसकी आकृति से असह्य पीड़ा परिलक्षित होती है। सब खड़े होकर करुण भाव से उसकी ओर देखने लगते हैं। ओंकार मुद्रिका को अनामिका में पहनते हुए दिखाई देता है)।

(पटक्षेप)

दूसरा दृश्य

(चाँदनी में स्नान करता हुआ और छींटों से उपल खंडों को नहलाता हुआ एक निर्झर बह रहा है। पास की एक लंबी चिकनी शिला पर चिंता और उसका पति बादरायण एक दूसरे के समक्ष बैठे है। ओंकार का षोडश वर्षीय पुत्र सोहम् चिंता के पीछे बैठा सब बातें सुन रहा है।)

बादरायण

क्या अब भी तुम्हारी समझ में नहीं आया ?

चिंता

नहीं, मैं यह नहीं समझी कि माताजी ने यह क्यों कहा कि तेरा अधिकार ऐसे प्रश्न करने का नहीं है। पूज्य भाईजी तो न जाने कितने प्रश्न कर रहे थे। पुरुष होने के नाते न ? स्त्रियाँ क्यों हेय समझी जाती हैं ? हम दोनों में तो एक ही रजोवीर्य वर्त्तमान है।

बादरायण

क्षुब्ध न होना, प्रिये ! तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा बल और शौर्य तुम्हारी बुद्धि और गति सभी न्यूनता की सूचना देते हैं। इसी कारण हम लोग परिपाटी की परंपरा का अनुसरण करना उचित समझते हैं।

चिंता

क्षमा कीजिये, आर्यपुत्र ! परंपरा की परिपाटी तो अतार्किक विश्व की जरावस्था का सहारा है। एक मिथ्या तथ्य भी कलाकार के हाथों में पड़कर सत्य बन जाता है। तल्लीनता की विभोरता में कलाकार

स्वयं यह भूल जाता है कि उसकी प्रतिमा असत्य है और वह शव की उपासना कर रहा है। यही नहीं, बार-बार के रागपूर्ण आत्मविस्मृत आलिंगन में, कृतिकार, मूर्ति में, केवल सत्यता ही देखने लगता है और वैसा ही बल ग्रहण करता है। परंपरा की देनवाले महान् व्यक्ति यही कलाकार ही तो हैं। आध्यात्म, धर्म, राजनीति, साहित्य सभी पर इन्हीं की मुहर है।

बादरायण

जाने दो परंपरा की बात को। क्या तुम हेयता का कोई नैसर्गिक प्रमाण अपने में नहीं पातीं ?

चिंता

हेयता न कहकर मैं उसे विषमता कहूँगी। किसी गुण में आप आगे हैं तो किसी में हम लोग।

बादरायण

प्रिये ! सच कहना, यदि आर्य ओंकार के स्थान पर वह अद्‌भुत् मुद्रिका तुम्हें मिल जाती तो क्या उसकी महत्ता को तुम सम्हाल सकतीं ?

चिंता

मैं यह स्वीकार करने के लिये कदापि प्रस्तुत नहीं कि मैं नहीं सम्हाल सकती। क्या मैं भाई ओंकार की सहोदरा नहीं ?

बादरायण

प्रिये ! आर्य ओंकार से तुम्हें इतना डाह क्यों है ?

चिंता

मुझे अपने पिता-माता से उपलब्ध ओज का अहंभाव है। भाई ओंकार की तद्-विषयक एकाधिकार की घोषणा से मेरी आत्मा तिल-

मिला उठती है। स्त्री होने के नाते गुरुजनों का भी वात्सल्य न मिला सका मुझे बड़ा परिताप है। परंतु इस विरोध की आपको चिंता न करनी चाहिये। बाँस की लाठी यदि प्रहार करती है तो बाँस की लाठी ही वार भी बचाती है।

बादरायण

तुम्हारा ऐसा विरोध अभूतपूर्व है।

चिंता

आर्यपुत्र ! क्या इससे भी किसी शास्त्रीय परंपरा में व्याघात उपस्थित होता है ?

बादरायण

मुझे एक प्रसंग स्मरण आ रहा है।

चिंता

(मुस्कराकर)

वह क्या है ? आर्यपुत्र !

बादरायण

एक कुलीन गृहिणी को न्यायाधिकरण में यह अवसर मिला कि वह अपने पति, पुत्र, तथा भाई—तीनों में से किसी एक के प्राण बचा सकती है। शेष को प्राणदंड मिलेगा।

चिंता

गृहिणी ने क्या कहा ?

बादरायण

पुत्र तो मेरे कुक्ष का है। पति अनायास, मार्ग में, प्राप्त हो गया है। सहोदर भाई का मिलना कठिन है।

चिंता

जीवन की नैसर्गिक परिस्थिति से अनभिज्ञ, व्यवहार-शून्य चिंतक, जब विचारों से खिलवाड़ किया करते हैं तो उन्हें ऐसी ही बातें सूझती हैं।

बादरायण

प्रिये ! एक दिन तुम्हें तात ओंकार से मिलाना है। सारा रोष शांत हो जायगा।

चिंता

(सोहम् की ओर देखकर और उसे अंक में भरकर)

मेरे पूज्य भाई की प्रतिकृति ! मैं उनसे कभी विरोध कर सकती हूँ !

[सब उठ खड़े होते हैं।]

(पटक्षेप)

तीसरा दृश्य

(एक बड़े ऊँचे टीले पर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे घनी छाया को घेरने के प्रयत्न में एक अस्तव्यस्त वृत्त अराजक वायु की शिकायत कर रहा है। वृक्ष की वेदी आकारवाली मोटी शाखाओं के बीच में बैठकर ओंकार और उसकी पत्नी माया प्रभंजन के झकोरों में झूले का सुख अनुभव कर रहे है। टीला तीन ओर तो धरातल से सपाट ऊँचा है। केवल एक ओर व्यवस्थित ढाल के कारण यातायात के लिये नीचे से संबद्ध है। सोहम् को इसी मार्ग से ऊपर आते देखकर माया कहती है।)

माया

आर्यपुत्र ! वत्स सोहम् चिंता के यहाँ से कब आया ?

ओंकार

अभी-अभी आया है और बड़ा बुद्धिमान् हो गया है। कहता था कि मुद्रिका के बल पर अपने पिता के ओज और आध्यात्म का एकाधिकार घोषित करने के कारण आर्या चिंता आपसे रुष्ट हैं। सोहम् भी संदेह करता है कि एक ही रजोवीर्य होने पर भी हम दोनों में इतनी विषमता क्यों है।

माया

परंतु इसमें आर्यपुत्र का क्या दोष है ? पूज्य तातचरण की घोषणा की यह टीका हुई।

(इतने में सोहम् आ जाता है। मातापिता के चरण स्पर्शकर

नीचेवाली जड़ पर बैठ जाता है। ओंकार और माया आशीर्वाद देते हैं।)

वत्स ! चिता प्रसन्न तो हैं ?

ओंकार

और बादरायणजी का स्वाध्याय निर्विघ्न चल रहा है ?

सोहम्

निसर्ग की स्वाभाविक गति में उनका असाधारण योग कभी उन्हें रूक्ष नहीं होने देता। पहले देखे हुए चलित चित्र की भाँति नियति-गति का स्वागत उनके लिये शिष्टाचार मात्र है। आर्या चिता का मेरे प्रति अपार वात्सल्य है।

माया

और तुम्हारे पूज्य पिता का विरोध करती हैं।

सोहम्

माताजी ! यदि प्रखर आलोक नेत्रों को चकाचौंध कर देता है तो इसे आलोक का विरोध न समझना चाहिये। वह तो जीवन खींच कर पावस के आह्लाद की सूचना देता है। यर्थाथता कभी-कभी बड़ी क्रूर होती है।

ओंकार

सोहम् के निर्णय को ही मैं चिता का वास्तविक रूप समझता हूँ। वह मेरी प्यारी बहिन.....।

सोहम्

माताजी ! स्त्रियों को अपने मत के व्यक्तीकरण का भी अधिकार नहीं है क्या ?

माया

है क्यों नहीं पुत्र ! परंतु कलिका वायु की गति के आड़े आकर भी, सौरभ विकीर्ण करके उसकी कीर्ति बढ़ाने में कृपणता नहीं करती । चिंता तो तुम्हारे पूज्य पिता की महत्ता को ही मेट देना चाहती है।

ओंकार

प्रिये ! तुम समझी नहीं। चिंता मुझे बहुत स्नेह करती है। केवल असीम ममता के ही कारण उसने अपने विवाद का लक्ष्य अपने ही आत्मीय भाई को बनाया है। उसकी युक्तियों में जो महान् तर्क है उसके समक्ष मैं अपनी हार मानता हूँ । वत्स सोहम् पर जो प्रभाव आज पड़ा है मुझ पर वह उसी समय पड़ा था जब चिंता की अवहेलना करके पूज्य पिता ने यह मुद्रिका मुझे दी थी ।

माया

आर्यपुत्र ! आपने तो केवल आज्ञा पालन ही किया है।

सोहम्

माताजी ! आप विश्वास कीजिये । आर्या चिंता इस घटना की आलोचना अवश्य करती हैं पर विरोध नहीं करतीं । हृदय के भीतरी तलों से निकली हुई वाणी को व्यक्त भी न किया जाय यह कहाँ का न्याय है ?

ओंकार

पिता की दृष्टि में न लिंगभेद और न आयुभेद की युक्ति स्नेह के समवितरण में आड़े आनी चाहिये । मैं भी यही कहूँगा कि पूज्य पिता-जी ने केवल परंपरा की परिपाटी का निर्वाह किया ।

माया

आर्यपुत्र के भी तीन पुत्र हैं। सहसा अपने मंतव्य का संकेत कर देना अच्छी नीति नहीं कही जा सकती।

सोहम्

माताजी ! आपकी कोख से ही तो हम सब उत्पन्न हुए हैं। आपके स्तन्य को लजाना हमारी मृत्यु है।

ओंकार

वत्स सोहम् ! बादारायणजी कब तक पधारेंगे ?

सोहम्

कदाचित् शीघ्र ही आवेंगे।

(सोहम् का प्रस्थान)

ओंकार

प्रिये ! बड़ी कठिन समस्या है।

माया

आप सब ठीक कर लेंगे।

ओंकार

तुम्हारा पुराना सेवक स्वर्णकार सुघट्टराज क्या कुछ सहायता न दे सकेगा ?

माया

परंतु प्रतीक के साथ छल करना आप उचित समझते हैं ?

ओंकार

पर प्रतीक छल के परे है इसकी परीक्षा भी कैसे हो ? विश्व में

साम्यवाद की अवतारणा के लिये मैं पहले अपने कुटुंब से ही श्रीगणेश करूँगा।

माया

बड़ी क्रांति मचेगी। योग्यतमावशेष का नैसर्गिक प्रवाह मानव की दुर्बल उक्ति का कौशेय पट अवरुद्ध नहीं कर सकता।

ओंकार

मैं तो उसी प्रवाह में योग देना चाहता हूँ। अवस्थांतर और परिस्थिति-विभेद उसी विकास के अवरोध हैं। इन्हें अनैसर्गिक समझकर हटा देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अतएव विषमता-विधायिनी मुद्रिका को समानरूप से सबके लिये उपलब्ध करा के योग्यतमावशेष की दौड़ में मैं अपने तीनों पुत्रों को छोड़ देना चाहता हूँ। गति-प्रदर्शकों को पहले से ही आगे-पीछे खड़ा कराकर दौड़ में विषमता का आरोप कर देना और योग्यतमावशेष की परख का स्वाँग भरना मूर्खता है।

माया

आर्यपुत्र! मेरे हृदय में तो कोई बार-बार कहता है कि बड़ा संघर्ष होगा। बड़ी कटुता बढ़ेगी। कपास के खेत में ही तंतुवाय की समाधि बन सकती है।

ओंकार

संघर्ष का स्वागत वीर हृदय ही करता है। कटुता तो घरघराती हुई नदी का फेन है। कपास-क्षेत्र कपास को जन्म देता है, तंतुवाय उसे मन-माना आकार देकर दूसरे के नंगेपन को ढकने योग्य बनाता है। दोनों एक ही कार्य में योग दे रहे हैं। यदि तंतुवाय अपनी समाधि

के लिये क्षेत्र का एक कोना ले लेता है तो विनिमय में अपने हाड़-मांस की खाद भी तो प्रस्तुत करता है।

माया

आर्यपुत्र उचित ही सोचते होंगे। कुशल सारथी 'हटो बचो' बहुत कम करता है। वह तो मोड़पर आकर भी तूर्य नहीं बजाता। अनिष्ट की आशंका से हृदय कंपन में ही उसे एक प्रकार का आनंद आता है। भविष्य आर्यपुत्र का उचित मार्ग प्रदर्शन करे।

ओंकार

तो सुघट्टराज को बुलाना चाहिये।

[दोनों उठ खड़े होते हैं।]

(पटक्षेप)

चौथा दृश्य

(हरी-हरी दूब बिछी हुई है। अच्छी संख्या में जनता उपस्थित है। जनरव कुछ अव्यवस्थित होकर कभी कोलाहल में परिवर्तित हो जाता और कभी शांत और गंभीर भाव धारण कर लेता है। इस हरित वनस्थली का एक छोटा भाग कुछ ऊँचा है। उस पर कुछ विशिष्ट नागरिक बैठे हैं। उनके ठीक बीच में एक सुगठित पुष्टकाय नवयुवक बैठा है। सब लोगों के नेत्र उसी की ओर लगे हैं। उसके खड़े होते ही पूर्ण शांति हो जाती है। संभाषण के पहले वह अपनी उँगलियों को इस प्रकार संचालित करता है कि अनामिका की चमकती हुई मुद्रिका सामने आ जाती है और सबकी दृष्टि उसकी ओर चली जाती है। तरुण का नाम रसमूल है। यह ओंकार का सबसे छोटा पुत्र है।)

रसमूल

बंधुओ ! आप स्वर्गीय तात ओंकार के वेग-संपन्न जीवन से अनभिज्ञ नहीं। आप उन्हें कदापि न भूले होंगे।

एक व्यक्ति

कदापि नहीं।

रसमूल

मैं उसी महान् वेग का एक स्फूर्ति-कण हूँ। माना कि आयु में मैं अपने भाइयों से छोटा हूँ परंतु पूज्य पिता का मुद्रिकाप्रदान एक प्रमाद की घटना नहीं है। वे प्रमाद से परे थे। इस सेवक में कोई विशेषता उन्होंने देखी होगी जो इसे मनोनीत किया।

एक तरुण

अवश्य, अवश्य ।

रसमूल

बंधुओ ! जीवन-संग्राम से भागने के लिये मैं तुम्हें शिक्षा नहीं देता; जीवन-संग्राम की घुस-पैठ के योग्य बनाने के लिये मैं तुम्हें शिक्षा देता हूँ । हमें सारे विश्व को अपनी विचार-धारा में दीक्षित करना है । हमारा धर्म ही हमारा कर्त्तव्य है। उसी का प्रचार हमारे जीवन का पवित्र कार्य है।

दूसरा तरुण

यदि कोई न माने तो ?

रसमूल

[तमतमाकर]

जो व्यक्ति, संस्था अथवा धर्म हमारे प्रचार-कार्य में विघ्न उपस्थित करेगा उसे हम बलपूर्वक हटा देंगे । हमारे झंडे के नीचे सबको आना होगा; प्रसन्नतापूर्वक अथवा अनिच्छा से । चिकित्सक रोगी की स्वीकृति कड़ुई औषधि पिलाने में नहीं लिया करता । धर्म-प्रचार के लिये हमें किसी की अनुमति नहीं लेनी है । अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए हम सिंहासनों को उलटेंगे, मठों को ध्वंस करेंगे ।

एक व्यक्ति

[अपने पास के व्यक्ति से चुपके से कहता है ।]

रसमूल तो बड़े उग्र प्रतीत होते हैं ।

दूसरा व्यक्ति

[सुनकर और उत्तेजित होकर]

मूर्ख ! देवदूत रसमूल क्यों नहीं कहता ?

तीसरा व्यक्ति

(रसमूल की ओर आदर भाव से एकटक ताकता हुआ)

कैसा तेज है ! कैसी अनुपम छटा है ! !

कई व्यक्ति

(समवेत स्वर में)

हम लोग आपकी सब बातें मानते हैं। आपके अधिनेतृत्व को स्वीकार करते हैं। आज्ञा दीजिये।

एक अधेड़ व्यक्ति

(बहुत धीमे स्वर से)

इतनी शीघ्रता की क्या बात है ? सबकी सुन लो। फिर जो समझ में आवे करना।

कुछ श्रोतागण

(उत्तेजित होकर, समवेत स्वर में)

विधर्मी है। नरक में ढकेला जायगा। निकाल दो इसे। क्या बकता है ?

(अधेड़ व्यक्ति पर आक्रमण का अभिनय होता है।)

रसमूल

तो आप सबको मैं अपने धर्म में दीक्षित करता हूँ। मुझमें विश्वास कीजिये। हम सब आज से बराबर हुए। हमारे धर्म की यह पहली विशेषता है।

जनरव

(समवेत स्वर में)

हम सब प्रस्तुत हैं। जो आज्ञा दीजिये उसे अभी पूरा करें।

रसमूल

तुम्हारी विजय होगी। धर्म का कार्य शीघ्र आरंभ कर देना चाहिये।

[सब खड़े हो जाते हैं। जयकार की ध्वनि बार-बार होती है।]

(पटक्षेप)

पाँचवाँ दृश्य

(कटि के नीचे वस्त्र लपेटे हुए एक तरुण सन्यासी मनुष्यों की मंडलाकार आसीन एक छोटी टुकड़ी के बीचोबीच बैठा है। संन्यासी का, कटि के ऊपर का भाग, अनावृत है। शस्य-श्यामल पृथ्वीखंड आधार और आकाश का नील आवरण आच्छादन है। संन्यासी की अनामिका में चमकती हुई एक मुद्रिका है। मानवमंडली इस महापुरुष को बड़ी श्रद्धा से देख रही है। संन्यासी का नाम ईश है। यह रसमूल का बड़ा भाई और ओंकार का मँझला पुत्र है। बोलते समय ईश के नेत्र कुछ ऊपर की ओर खिंच जाते हैं और उनमें एक अलौकिक आभा कौंध जाती है। सन्यासी की मुद्रिका का दृश्य सब व्यक्तियों के लिये स्पष्ट है। सन्यासी बैठे ही बैठे बोलना आरंभ करता है।)

ईश

विश्व के प्रखर और उग्र रूपों, अथवा स्निग्ध और मधुर मूर्तियों को ही ईश्वर समझ बैठना और उनकी पृथक्-पृथक् अर्चना करने लगना वैसी ही नासमझी है जैसे व्यक्ति को न पूजकर उसके केशों, करों और नेत्रों को पूजा जाय। ये केवल उस महान् पिता के व्यक्त आलोक चिन्ह हैं। उनके पीछे पहुँचकर इनके उत्पादक, संचालक और प्राणदायक की उपासना करना सच्चा धर्म है। ऐहिक अवयवों के पीछे अमूर्त आत्मा का सम्मान वास्तविक आदर है। प्रतीक-उपासना असंस्कृत बुद्धि का सहारा है। ईश्वर इन सबके परे बैठकर समस्त सृष्टि

का संचालन कर रहा है। परस्पर का सद्व्यवहार उसकी प्रमुख देन है। यदि हम उसका उल्लंघन करते हैं तो भरपूर बदला चुकाना पड़ेगा।

एक पुरुष

परंतु हम आपके कथन को पूर्ण प्रमाण कैसे मान लें ?

ईश

प्रश्न नितांत उचित है। आप मेरी इस अनामिका का स्वर्ण आलोक देख रहे हैं ? पूज्यपाद तातचरण ने कुछ समझकर ही मँझला होते हुये भी सर्वोच्चता-निरूपिणी इस मुद्रिका को मुझे दिया था।

एक व्यक्ति

[बड़े श्रद्धा-भाव से]

हम सबके अहोभाग्य हैं।

ईश

[अधिनायक की गर्वीली वाणी में]

जिस श्रद्धा, भक्ति और तितिक्षा भाव से आप सब एक-एक करके मेरे पीछे चले आये हैं और मेरे संदेश को सत्य समझकर सुन रहे हैं उसे स्थिर रखने की आवश्यकता है। नीति के और व्यवहार-शास्त्र के पूर्व परिचित नियमों की ही समीचीन व्याख्या करने मैं आया हूँ। यदि आप मुझे ईमानदार समझें, यदि आपको मेरे संदेश में सच्चाई दिखाई पड़े, तो जो धर्मदीक्षा मैं आपको देने जा रहा हूँ उसे मुक्त-हस्त होकर विश्व में वितरण कीजिये।

सारी मंडली

[समवेत स्वर में]

जो आज्ञा। हम सब प्रस्तुत हैं।

ईश

प्यारे शिष्यो ! धर्म-प्रचार का पवित्र कार्य निरापद नहीं है। सत्य भी कभी-कभी बड़ा कटु होता है। अतएव पहले मुझे भली प्रकार समझकर फिर मेरे धर्म को समझने का प्रयत्न कीजियेगा। मेरा मन बोल रहा है कि जिस समय परंपरा-उन्मूलक और परिपाटी-ध्वंसक के रूप में कट्टर विश्व मुझे देखेगा वह मेरा शत्रु बन जायगा। वह मुझे नाश करने के लिये विकल हो उठेगा। मुझे ढूँढ़ने के लिये शिकारी कुत्ते निकलेंगे। उस परिस्थिति का मुझे भय नहीं। मानवों की दुर्बलता के लिये मेरे पास अपार सहानुभूति है। उस भीषण परीक्षा के समय मेरी लज्जा केवल ईश्वर रख सकता है।

[कहते-कहते ईश के नेत्र ऊपर खिंच जाते हैं। वह किसी अज्ञात परिस्थिति में तन्मय हो जाता है। शिष्यों की श्रद्धा और भी बढ़ जाती है। वे सब हाथ जोड़ कर देखने लगते हैं। प्रकृतिस्थ होने पर सबकी ओर से एक शिष्य कहता है।]

एक शिष्य

गुरुवर ! हम सबको क्या आदेश है ?

ईश

मानवता की बड़ी भारी संख्या मस्तिष्क के विकास और बुद्धि की उन्नति से अनभ्यस्त है। लम्बे चौड़े दार्शनिक ऊहापोह उसमें पैठ नहीं पाते। अतएव श्रद्धा, विश्वास, भक्ति अहिंसा आदि हृदय की कोमल वृत्तियों के सहारे मनुष्य की कुत्सित वृत्तियों और भावनाओं का परिष्कार करना आप लोगों का काम है। ईश्वर एक है। वह संसार में मनष्य होकर जन्म नहीं लेता। वह विश्व से परे रह कर उसका संचा-

लन करता है। विस्मरण न करना कि सच्चे हृदय से पश्चाताप करने वाले के पाप वह तुरंत मुक्त कर देता है। उच्च आदर्शों और उच्च प्रवृत्तियों का संदेश आप लोगों को घर-घर पहुँचाना है जिससे विश्व की कटुता दूर हो जाय।

एक शिष्य

यदि कोई हमारी बात न माने तो ?

ईश

[उदार भाव से]

किसी के न मानने का अधिकार छीनना आपका काम नहीं। आप ईश्वर से प्रार्थना कीजिये कि न मानने वाले को वह सद्बुद्धि दे। आप लोग अपने-अपने कार्य क्षेत्र के लिये पृथक्-पृथक् केंद्र चुन लीजिये। कार्य शीघ्र ही आरंभ हो जाना चाहिये।

शिष्य वर्ग

[समवेत स्वर में]

जैसी आज्ञा।

[प्रसन्नभाव से सब उठकर खड़े हो जाते हैं। ईश के सम्मान में कई बार समवेत स्वर से जयकार होता है। ईश चमकती हुई मुद्रिका को अपनी अनामिका में आवर्त्तन करता है।]

(पटक्षेप)

छठाँ दृश्य

[सूर्य का प्रखर प्रकाश फैला हुआ है। एक बड़े भवन में, भीतर की ओर, कुछ श्रोतागण बैठे हैं। एक ओर एक छोटा काष्ठ पीठ रखा है। सोहम् इसी पर आसीन है। वह रेशमी वस्त्रों से आच्छादित है। मस्तक पर चंदन और गले में रुद्राक्ष की माला है। सिर की मोटी शिखा दूर से दिखाई देती है। उसकी आकृति में अपार तेज है। उसकी अनामिका की मुद्रिका सजगता से छिपी हुई है। असावधानी के कारण कभी-कभी उसका आलोक दिखाई दे जाता है। सोहम् संभाषण देने के लिये ज्योंही खड़ा होता है, पूरी शांति स्थापित हो जाती है।]

सोहम्

परब्रह्म सबकी माया दूर करे। बिना ज्ञान मुक्ति नहीं होती उस परमतत्व के परिस्थिति-निरूपण के लिये बुद्धि और ज्ञान के क्रमिक परिष्कार की आवश्यकता है। ब्रह्म को अपने से परे, अपने से पृथक्, समझने वाली बुद्धि मायाप्लुत है। विश्व की अनेक रूपता में एक रूपता अस्तव्यस्तता में व्यवस्था का आरोप करना उज्ज्वल विकसित परिस्थिति का चिन्ह है। द्वैत का भास अज्ञान-दर्पण का प्रतिबिंब है। जगत से दूर बैठकर जगत का संचालन करने वाला कोई नेतृत्व का पुतला कहीं नहीं है। हम अपने पापों से डर कर अनुपस्थिति में उपस्थिति का आरोप करते हैं। 'न' कार के समक्ष नतमस्तक होकर 'हूँ' कार का अपमान करते हैं।

एक श्रोता

[अपने पास के व्यक्तियों से]

तो क्या ईश्वर है ही नहीं। समझ में नहीं आता कि महात्मा सोहम् क्या कहते हैं।

दूसरा व्यक्ति

यह तो घोर नास्तिकता है।

तीसरा व्यक्ति

[रुष्ट होकर]

पहले समझने का प्रयत्न तो करो। बुद्धि की कुल्हिया में ज्ञान का समुद्र कैसे अट सकता है ?

[शांति हो जाती है।]

सोहम्

प्रिय सहचरो ! मैं आपको ईश्वर दिखाने नहीं आया, मैं आपको ईश्वर बनाने आया हूँ। मैं आपको मुक्ति दिला कर स्वर्ग पहुँचाने का प्रयोग नहीं करता; मैं आपको माया-मुक्त करके पृथ्वी को ही स्वर्ग में परिवर्तित करने का आदेश देता हूँ। ध्यान से मेरी बातों को सुनिये। प्रत्येक अणु-परिमाणु में वही परमतत्व झलक रहा है। सर्वत्र ही अद्वैत है। आप, हम, जड़ चेतन सभी ब्रह्म हैं। इसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। ज्ञान की परमावस्था में ऐक्य का साक्षात अनुभव सर्वसुलभ है। ज्ञान के विकास में, ग्रंथों का अनुशीलन, सतसंगति, मनन, ध्यान योग सभी का योग वांच्छनीय है। अज्ञान अथवा माया के आवरण विदीर्ण करने का यही साधन है। तपस्या करके शरीर क्षीण करना, अनशन करना, शरीर को नाना प्रकार के कष्ट-प्रयोगों में डाल कर उसके

भीतर के निवासी को चिंतित करना उन्नति और विकास की उलटी गंगा बहाना है।

एक श्रोता

[जिज्ञासु भाव से]

आपके ग्रंथों में इसके कोई प्रमाण भी हैं? मन शुद्धि के लिये व्रत और उपवास तो परमावश्यक समझे जाते हैं।

[सब लोग प्रश्नकर्त्ता की ओर देखने लगते है।]

(प्रश्न के बाद उचित उत्तर की आशा से लोग फिर सोहम् की ओर देखने लगते है।)

सोहम्

[मुस्कराकर]

मन को अशुद्ध समझना ही ब्रह्म को अशुद्ध समझना है। ऐसा भ्रम माया-जन्य है। सम्पूर्ण शुद्ध में अशुद्धि का आरोप करके शुद्धि के कृत्रिम उपायों का अवलंबन करना अज्ञान को सशक्त बनाना है। रही प्रमाणों की बात—भारतीय ग्रंथों में वे भरे पड़े हैं। कुछ अति-रंजना के साथ और व्यंगपूर्ण शैली में कुलरणव तंत्र में मेरे कथन का स्पष्ट समर्थन मिलेगा।

एक तरुण

[जिज्ञासुभाव से]

यह क्या प्रसंग है? भगवन्!

सोहम्

कुलरणव तंत्र के कथन का भाव यह है कि माया से वंचित मूर्ख लोग ही यह सोचा करते हैं कि आत्मा की मुक्ति अल्पाहार अथवा निराहार

अथवा शरीर को दुर्बल बनाने वाले अन्य विधानों से हो सकती है। शरीर के क्षीण होने से बुद्धि का ह्रास होता है। फिर मुक्ति कैसे ? खर नग्न घूमा करते हैं। क्या वे योगी हैं ?

[करतल ध्वनि]

यदि मुक्ति भस्म रमाने और मिट्टी मलने से मिले तो पंक में लोटने वाले ग्राम-कुक्कुर उसके सबसे पहले अधिकारी हैं।

[करतल ध्वनि]

वनों में हिरन हरी घास और हरे पत्ते खाकर रहता है क्या वह योगी है ? सारी गरमी में समानरूप से नग्न विचरण करने वाले, खाद्य और अखाद्य के विचार से परे ग्रामपशु क्या तपस्वी हैं ?

[बड़े वेग की करतल ध्वनि]

स्मरण रखिये। ये सारे अभ्यास धोखे की जड़ हैं।

(सोहम् पास रखे हुए गिलास से जल पीने लगता है। लोग परस्पर उसकी प्रखर बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। उसके खड़े होते ही शांति हो जाती है।)

पवित्र जीवन यापन और सरल गतिविधि दूसरी बात है और विश्व के पेचीदे रहस्य की अनभिज्ञता और जगतगति के प्रति मूढ़ अज्ञान दूसरी बात है। इसी माया से चिपके रहने का आपका अधिकार मैं छीनना चाहता हूँ। जिधर जितना ही अधिक अज्ञान का स्थूल रूप मुझे दृष्टिगत होता है उतना ही मेरे विरोध का रूप उग्र हो जाता है उसी परीक्षक की भाँति जो अपने शून्य का आकार परीक्षार्थी के प्रमाद के अनुसार बड़ा करता चला जाता है। शुद्ध ज्ञान को अपनाकर अपने सच्चे स्वरूप को समझिये।

एक श्रोता

[व्यंग भाव से]

तो आज से उपासना, भक्ति और भगवान सब पर अर्गला लगा देनी चाहिये।

दूसरा श्रोता

[धिक्कारते हुए]

कैसा मूर्ख है ?

सोहम्

[पहले प्रश्नकर्त्ता की ओर देखकर]

अर्गला पहले लगाना चाहिये अपने अज्ञान पर। यदि आपको भक्ति और धर्म के नाम पर भगवान से खिलवाड़ करना है तो आपको देवताबाजों के खुले अड्डे बहुत स्थानों पर मिल जायँगे। इसी देश के लोग तुलसी और शालग्राम के प्रतीकों से नपुंसकलिंगत्व छीनकर स्त्रीलिंग और पुल्लिग का क्रमशः आरोप करके उनके विवाह में सहस्रों मुद्रायें खुशी-खुशी व्यय करते हैं और समझते हैं कि ईश्वर और ईश्वरी भी मनुष्यों की भाँति सोहाग सुख भोग रहे हैं। इस धर्माचरण में, इस आध्यात्म में, इस लोकाचार में जो घोर अज्ञान निहित है उसका वहिष्कार सुलझी हुई बुद्धि ही कर सकती है। हृदय, इंद्रिय और ऐहिकता की लपेट में परमतत्व को जकड़ने का प्रयत्न करना मानवता की मलिन साध का परिणाम है और इससे ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का अज्ञान प्रकट होता है। केनोपनिषद के अनुसार ब्रह्म का वाणी द्वारा प्रकाश नहीं होता ब्रह्म से वाणी का प्रकाश होता है। ब्रह्म का मन द्वारा चिंतन नहीं किया जा सकता ब्रह्म से ही मन चिंतन करता है। जिसकी वाणी और मन द्वारा उपासना की जाती है वह ब्रह्म नहीं है।

[थोड़ा जल पीकर]

मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी बात मान ही लें। मैं यह नहीं कहता कि स्वर्गीय ओंकार का मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ और मेरी अनामिका की मुद्रिका इसका प्रमाण है कि मैं श्रेष्ठतम विभूति हूँ। मैं तो अपने सिद्धांत और धर्म को आपकी समझदारी की हाट में बुद्धि और तर्क की परख के लिए उपस्थित मात्र करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। सच्चा धर्म वही है जो समझ के आक्रमणों को झेलकर युगों की छाती चीरता हुआ चला आता है। सच्चा धन वही है जो व्यय होने के बाद भी बच रहता है और सच्चा वृद्ध भी उसी को समझना चाहिये जो काल की डाढ़ से बचा हुआ है।

[सोहम् कुछ थका-सा दिखलाई देता है और इतना कहकर बैठ जाता है।]

एक व्यक्ति

बहुत स्पष्ट तो कह डाला। मानने योग्य बातें हैं।

दूसरा व्यक्ति

बड़ा विद्वान है।

तीसरा व्यक्ति

मेरी समझ में तो कुछ आया नहीं। मैं तो वक्ता की भावभंगी ही देखता रहा।

पहला व्यक्ति

कुछ पढ़े लिखे भी हो? काले अक्षर का आकार कभी नापा है?

कई व्यक्ति

[समवेत स्वर में]

बड़ी अच्छी व्याख्या है! बड़ी सुंदर मीमांसा है! हम लोग कृतार्थ हुए।

एक तरुण

[श्रद्धा भाव से ओतप्रोत]

अहंभाव छू तक नहीं गया है। देखो न आकृति से कैसा दिव्य आलोक लक रहा है।

[सोहम् नेत्र नीचे कर लेता है।]

समस्त एकत्रित मंडली

हम सब आपके शिष्य हैं। हम सब आपके धर्मावलंबी हैं। यही च्चा धर्म है।

[कई बार उच्च स्वर में सोहम् के लिये जयघोष होता है। सारी ता उठकर खड़ी हो जाती है। सोहम् भी खड़ा हो जाता है।]

(पटक्षेप)

सातवाँ दृश्य

(सोहम्, ईश तथा रसमूल के युगों को बीते कई शताब्दियाँ हो चुकी है। एक राजनगर के जन-संकुल चतुष्पथ पर भीड़ है। वह कई टुकड़ों में बँटी हुई है। प्रत्येक थोक अपने को दूसरे से पृथक् किये है। परस्पर विरोध को उत्तेजना दी जा रही है। क्रोध की बाढ़ में शिष्टता और नागरिकता बही जा रही है। रौद्र के सात्विक भाव सबकी मुद्रा पर झलक रहे है। बात-बात में उष्णता उबलने लगती है। एक टुकड़ी का अधिनायक सहसा बाहर निकल कर रक्तनेत्रों से कुछ कहने लगता है।)

पहली टुकड़ी का अधिनायक

[अपने अनुयायियों से]

मेरे प्यारे भाइयो ! तुम्हारा धर्म सबसे महान है। देवदूत रसमूल आयु में सबसे छोटे थे पर पिता की दृष्टि में सबसे बड़े थे। इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। विश्व की सर्वश्रेष्ठ विभूति की घोषणा करने वाली मुद्रिका पिता ने उन्हीं को दी थी।

दूसरी टुकड़ी का अधिनायक

[उच्च स्वर में]

झूठ बोलता है। पिता ने अपने मँझले पुत्र ईश को वह मुद्रिका दी थी। सबसे बड़ा धर्म ईश धर्म है।

तीसरी टुकड़ी का अधिनायक

[सबको तिरस्कार करता हुआ]

गाल बजाने से तर्क में बल नहीं आता व्याख्यान देने से धर्म बड़ा नहीं होता। जिस धर्म पर युग की व्यापकता और दीर्घकालीनता ने अपनी मुहर लगा दी है वही धर्म बड़ा है। क्या आप लोग यह नहीं जानते कि पूज्य ओंकार के सबसे ज्येष्ठ पुत्र सोहम् ही थे। मुद्रिका वास्तव में उन्हीं को मिली थी, इसके पर्याप्त प्रमाण हैं।

एक व्यक्ति

वह बकता है।

दूसरा व्यक्ति

झूठा है!

तीसरा व्यक्ति

बड़ा योग्यता से होता है आयु से नहीं।

पहली टुकड़ी का अधिनायक

[बाहर निकलकर]

वेदांती है वेदांती। यह जड़ चेतन में भेद नहीं देख सकता। इसकी दृष्टि में सभी एक हैं। बड़ा पंडित बनता है। कहता है गाय, हथिनी, कुत्ता, चंडाल और पढ़े लिखे मेरे लिये बराबर हैं।

तीसरी टुकड़ी का अधिनायक

[क्रुद्ध होकर]

बस बहुत हुआ! अब आगे बढ़े तो जिह्वा अधरों के बाहर लटकती हुई दिखाई देगी।

पहली टुकड़ी का अधिनायक

[लपक कर]

मारो ! मारो ! इसे मार डालने से स्वर्ग मिलेगा !

[पहली टुकड़ी तीसरी टुकड़ी की ओर वेग से झपटती है।]

दूसरी टुकड़ी का अधिनायक

इस प्रकार संघर्ष से क्या लाभ ? सम्हल जाओ ! देवदूत रसमूल के अनुयायियों को सावधानी से काम लेना चाहिये।

तीसरी टुकड़ी का एक व्यक्ति

मिला हुआ है। चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं। इसकी भी खबर लो।

[वेग से कोलाहल होता है।]

मारो ! मारो !

[परस्पर युद्ध होने लगता है। रक्त से पृथ्वी तर हो जाती है। शव से पृथ्वी ढक जाती है। शांतिरक्षकों के आते ही भीड़ तितर-वितर हो जाती है। जो लोग भागने में विलंब करते हैं, शांतिरक्षक उन्हें पकड़ लेते हैं। थोड़ी देर में चतुष्पथ बिलकुल शून्य हो जाता है। कहीं से घूमते-घूमते एक योगिराज आकर खड़े हो जाते हैं। रक्त लथपथ शवों को उठाये जाते देखकर उनकी मुद्रा विषाद से युक्त दिखाई देती है। योगिराज के सामने ही एक-एक करके शव हटा दिये जाते है। शांतिरक्षकों की भीड़ कम होने पर जनता फिर धीरे-धीरे एकत्रित होने लगती है। योगिराज को देखकर शांतिरक्षक कहता है।]

शांति रक्षक

[दूसरे शांति रक्षक से]

यह मुंडित मस्तक साधु क्या फिर कोई झगड़ा करावेगा ?

[योगिराज से]

कहो जी तुम किस धर्म के अनुयायी हो ?

योगिराज

विश्वधर्म के। शाश्वत धर्म के।

शांति रक्षक

यह क्या कोई नया धूम्रकेतु है? यह बतलाओ कि रसमूलवादी और सोहम्वादी में से तुम किसकी ओर से लट्ठ चलाओगे?

योगिराज

किसी की ओर से नहीं। यदि उनकी पिपासा मेरे ऊपर प्रहार करने से शांत हो तो मैं खड़ा हूँ।

शांति रक्षक

परंतु इन दोनों धर्मों में तुम्हारी सहानुभूति किधर है?

योगिराज

दोनों ही ओर।

एक युवक

[सहसा धीमे स्वर से कह उठता है]

चमगीदड़ है, चमगीदड़!

योगिराज

[सुनकर]

वत्स! ठीक कहता है। उर्ध्व चरणावलंबन की कठिन साधना से जागकर विश्व की अज्ञान-निशा में संचरण करने चल दिया हूँ। परंतु बेटा! तुम्हारी उक्ति में जो दंशन है वही व्यंग झगड़े की जड़ है।

युवक

[सामने आकर]

क्षमा कीजिये, योगिराज!

[भीड़ और बढ़ने लगती है।]

प्रधान-शांतिरक्षक

[सशंक होकर]

देखिये महानुभाव ! सब धर्मों के लोग यहाँ एकत्रित होने लगे हैं। कहीं झगड़ा फिर न हो जाय ! यहाँ मैं किसी प्रकार के शास्त्रार्थ करने की आज्ञा नहीं दे सकता।

योगिराज

मैं तो झगड़े को मिटाने के लिये आया हूँ।

प्रधान-शांतिरक्षक

ऐसा तो सभी कहते हैं ।

योगिराज

फिर आप क्या आज्ञा देते हैं ?

प्रधान-शांतिरक्षक

यहाँ एकत्रित न होकर आप इनके नेताओं मे बातचीत कर लीजिये

कुछ लोग

हम लोग अभी लिवाये आते हैं।

योगिराज

[शांतिरक्षकों के प्रधान से]

आप इतने सशंकित क्यों हैं ?

प्रधान-शांतिरक्षक

बिना अन्न जल के घंटों काम करना पड़ता है।

[इतने में तीन व्यक्ति तीन ओर से आते दिखाई देते हैं। तीनों की वेशभूषा पृथक् पृथक् है। तीनों के पीछे मनुष्यों की एक-एक छोटी टुकड़ी

चली आती है। लोग इन व्यक्तियों का अभिवादन करते हुए इन्हें मार्ग प्रदर्शित करते है।]

एक नेता

[त्वराभाव प्रदर्शित करता हुआ, योगिराज से]

कहिये महोदय ! इस मेल के प्रस्ताव से क्या लाभ ? जब-जब इस प्रकार की बातें हुई हैं कोई लाभ नहीं हुआ। कटुता ही बढ़ी।

दूसरा नेता

ठीक तो है। समय का व्यर्थ व्यय कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? हम लोगों को अपना-अपना जातीय संगठन करने दीजिये। जब हम सब समान-रूप से सशक्त हो जायँगे मेल स्वयं हो जायगा। अभी तो हमें फँसे हुए व्यक्तियों के लिये न्यायाधिकरण जाना है। धन की व्यवस्था करनी है।

तीसरा नेता

[बड़े उग्रभाव से]

सुनो भिक्षुक ! हम लोगों को ऐसी आज्ञा दिलवादो कि हम एक बार मन खोलकर लड़ लें। जी भर जायगा तो मेल भी हो जायगा।

योगिराज

आहुति डालकर आप अग्नि शांत करना चाहते हैं। क्या थोड़ा समय व्यय करके आप मेरी प्रार्थना नहीं सुन सकते ?

एक नेता

आप सोहम्वादी हैं ?

दूसरा नेता

नहीं रसमूलवादी ?

योगिराज

नहीं मैं मनुष्य हूँ। मैं कोई भी वाद-वादी नहीं। मैं आप सबके धर्मों का आदर करता हूँ।

प्रधान-शांतिरक्षक

आप लोग निकट के उस उद्यान के एक कोने में आसीन हो जाइये। देखिये पाँच व्यक्तियों से अधिक न होने पावें।

[योगिराज आगे चलता है। दूसरे नेता भी उन्हीके पीछे-पीछे चलने लगते हैं।]

एक व्यक्ति

[सहसा भीड़ से निकल कर]

मुझे भी पीछे जाने की आज्ञा मिलनी चाहिये। कहीं हमारे नेता को अकेले पाकर उन पर कोई आक्रमण न कर दे।

दूसरा व्यक्ति

[उसी प्रकार भीड़ से निकल कर]

तो मुझे भी जाने दिया जाय। हमारा प्यारा नेता भी एकाकी ही है।

प्रधान-शांतिरक्षक

[लाठी दिखा कर सब को पीछे हटाते हुए और तितर-बितर होने का संकेत करते हुए]

ये लोग लड़ने वाले नहीं, लड़ाने वाले हैं। मूर्ख लोग खोपड़ी फोड़ते और फुड़ाते हैं। यदि शरीर को क्षत-विक्षत करने वाले युद्ध न हों तो मलहम पट्टी करने वालों को सेवा करके यश अर्जन करने का अवकाश कब मिले। तुम लोग इन लोगों से बिल्कुल निश्चिंत रहो। ये लोग तुम लोगों की आँख बचाकर दिन में दस बार हाथ मिलाते हैं।

[भीड़, शांतिरक्षकों की डाँट से तितर-बितर हो जाती है।]

(पटक्षेप)

आठवाँ दृश्य

[एक बड़े उद्यान के कोने में चार व्यक्ति बैठे हैं। चारों की वेशभूषा पृथक्-पृथक् है। उनमें एक वही पूर्व परिचित योगिराज है। वह बड़ी तल्लीनता से सिर हिला-हिला कर कुछ कहता है। शेष लोग ध्यान से सुनते हैं। बीच-बीच में वाद-विवाद होने लगता है। योगिराज जब ऊँचे स्वर से बोलने लगते हैं तो पूर्ण निस्तब्धता छा जाती है। अन्यत्र भी निस्तब्धता छाई है। कही कोई नागरिक चलते नही दिखाई देता। केवल शांति-रक्षकों के परिभ्रमण का शब्द सुनाई देता है। रात धीरे-धीरे बढ़ रही है।]

योगिराज

आप लोग यह सन्नाटा देख रहे हैं ? कैसी भयावह निर्जीवता है ?

[मुस्कराते हुए]

रसमूलवादी

हम लोग शांति के बहुत निकट हैं। निर्वाण प्राप्ति का श्रीगणेश है।

सोहम्वादी

[रोष से]

योगिराज ! यहाँ भी व्यंग। आप क्षमा करेंगे यदि मैं भी कुछ कहूँ।

योगिराज

आप लोगों को मैंने सुनने को बुलाया है, कहने को नहीं। आतंक और भय से उत्पन्न हुई निष्क्रियता को शांति कहना, मृत्यु को मुक्ति

समझना सचमुच ही विषाक्त मनोभाव का प्रमाद है। सच्ची शांति तो विश्व के अनैसर्गिक क्षोभ के प्रति तीव्र निर्वेद की साध होती है।

ईशवादी

महाराज ! आप कृपापूर्वक यह बतलाइए कि हम लोगों में से किसका धर्म सर्वश्रेष्ठ है। हमारा झगड़ा अभी शांत हो जायगा।

योगिराज

[मुस्कराकर]

क्या मुझ पर आपका इतना विश्वास है ?

रसमूलवादी

आप कहिये भी ?

योगिराज

मैं तुम्हें संभाषण दे रहा हूँ। वह दूर रक्खी हुई टार्च के भीतर के आलोक का आकार हम लोगों पर हँस रहा है। जानते हो क्यों ?

सोहम्वादी

नहीं।

योगिराज

असंभव को संभव की परिधि में लाने के मूर्ख प्रयास में।

[सब टार्च की ओर देखने लगते है।]

रसमूलवादी

तो क्या निर्णय असंभव है ?

योगिराज

क्या आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर पहले देंगे ?

ईशवादी

वह क्या है ?

योगिराज

पृथ्वी का वह भाग जिसकी छाती पर, सर्वदा के लिये, समानांतर में, दो लोहे की पटरियाँ गड़ी हैं, और क्षण-क्षण में लाखों मनो के बोझ वाली रेलें उस पर ऊधम मचाया करती हैं, अधिक उपादेय और बड़ा है अथवा वह भाग अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ है जिस चीर कर वनस्पति संसार निकलता है ?

सोहम्वादी

मानव बुद्धि को चुनौती देने वाला आपका यह प्रश्न कला और विज्ञान की एक साथ सापेक्षिक तुलना की अपेक्षा करता है।

[कुछ रुक कर]

इतना ज्ञान हम लोगों में कहाँ है ?

योगिराज

अच्छा यह तो बतलाइए कि निसर्ग और मानव की ऊपरा चढ़ी में पृथ्वी की उपयोगिता बढ़ी अथवा नहीं ?

ईशवादी

अवश्य बढ़ी।

योगिराज

परंतु किसके लिये ?

रसमूलवादी

मनुष्य के ही लिये।

योगिराज

इसी प्रकार मानव-बुद्धि के विकास की उर्वरा भूमि की ही उपज सारे धर्म हैं, जिसका एकमात्र आदर्श मानवता की उन्नति के अतिरिक्त

कुछ हो ही नहीं सकता। अतएव परस्पर का विरोध उत्पन्न करके मानवता को ही नष्ट करना अधार्मिक हुआ न ?

सोहम्वादी

परंतु पृथ्वी की ऊँची नीची मनमानी उभार को मानवता की स्वार्थी चेतना ऊपर चलने और कुचलने में सरलता के लिये दबाकर समतल कर दिया करती है।

योगिराज

यह ठीक है, पर सर्वसहा वसुंधरा इसका बुरा नहीं मानती। उसके भीतर का ज्वालामुखी तभी धड़धड़ाने लगता है जब कृतघ्नता का जल उसे क्षुब्ध कर देता है।

सोहम्वादी

यह कृतघ्नता कैसी ?

योगिराज

किसी के उपकार विस्मरण करने के स्वभाव से मनुष्य में जो व्यापक असावधानी आ जाती है उससे परस्पर के आदान-प्रदान में भारी संघर्ष होने लगता है और व्यवहार में घृणा उत्पन्न हो जाती है।

रसमूलवादी

योगिराज ! मुझे क्षमा कीजिये यदि मैं कहूँ कि जो गहरी घृणा कर सकता है वही गहरा प्यार भी कर सकता है। जिसमें धनुष को जितना ही अधिक झुकाने का बल है, उतना ही दूर उसका वाण जाता है। अधिकतर देखा गया है कि लोग अपनी अयोग्यता, अक्षमता, कायरता के कारण उदार क्षमाशील और दयावान बनने का स्वाँग भरते हैं।

योगिराज

[रसमूलवादी से]

आपकी उक्ति का अंतिम भाग तो नितांत सत्य है। यह तो मानवता की पुरानी दुर्बलता है और कदाचित रहेगी भी। गहरी घृणा भी मानवता के विकास से लिपटी हुई है।

[ईशवादी की ओर मुड़ कर]

पर पापी के लिये नहीं पाप के लिये। मनुष्य के प्रति गहरा प्यार ही इस घृणा के मूल में रहता है।

ईशवादी

ठीक है।

योगिराज

घृणा का आधार जब प्यार न हो तो तब उसे घृणित और कुत्सित वृत्ति समझना चाहिये। ऐसी घृणा का प्रदर्शन निर्बलता की घोषणा है।

सोहम्वादी

कोई भी वृत्ति कब कुत्सित हो जाती है कब नहीं इसका समझना बड़ा दुस्तर है। तरुणी के आकार-प्रकार पर काम दौड़ता है उसके गुणों पर प्रेम। परंतु आकार सौंदर्य भी एक गुण। फिर क्या काम भी प्रेम नहीं हुआ ?

योगिराज

दृश्य पथ से आकार-सौंदर्य पहुँचता है और बुद्धिपथ से गुण-सौंदर्य। हृदय की तद्विषयक सुषुप्त अवस्था दोनों ही जागरित करते हैं। परंतु ऐहिक-प्रकंपन की क्षमता दोनों में समान प्रकार की नहीं होती। यही काम और प्रेम का भेद है। शरीर की तिलमिलाहट और आत्मा के

क्षोभ का भेद समझना कठिन तो है पर असंभव नहीं। जीवन-संस्तरण-विधान भी एक कला है। उसका उदय विरले अधिकारी के हृदय में ही होता है। क्षण-क्षण के अभ्यास की निरंतरता और सजग जागरूकता ही हमें उस अधिकारी की परिस्थिति तक पहुँचा सकती हैं?

सोहम्वादी

योगिराज! हम अपने मंतव्य से दूर आगए।

योगिराज

नहीं बिलकुल नही। किसी एक धर्म को दूसरे की अपेक्षा बड़ा मानने की जो कठिनता है उसी को स्पष्ट करने की मै चेष्टा कर रहा हूँ। यह बड़ा दुस्तर कार्य है।

रसमूलवादी

फिर तो कुछ न हुआ। झगड़ा कैसे मिटेगा?

योगिराज

झगड़ा छोटे बड़े की विषमता उत्पन्न करन से मिटेगा अथवा साम्य के प्रचार से?

ईशवादी

मुझे इससे संतोष नही। मेरा धर्म तो विश्व की अधिकांश संख्या मानने लगी है। सर्वश्रेष्ठ होने का इससे अधिक प्रमाण और हो ही क्या सकता है?

रसमूलवादी

हमारा धर्म नया होते हुए भी हम लोगों की संख्या इतनी बढ़ गई है। इससे अधिक लोकप्रियता का क्या प्रमाण हो सकता है?

[सोहम्वादी कुछ कहना ही चाहता है कि योगिराज उसे रोककर कहने लगता है।]

इस विवाद को समाप्त करके मेरे कथन पर ध्यान दीजिये। समस्त विश्व अखिल क्रियाकलाप का गत्यात्मक पिंड है। यह प्रतिक्षण संचलनशील है। जगत में गति ही गति है। व्यक्त स्वरूपों में गति है, विचारों में गति है, भावनाओं में गति है, परिस्थितियों में गति है, प्रत्येक अणु प्रमाणु में गति है। गति ही विश्व का सौंदर्य है। इस गति के आलोक का किसी कोण से प्राप्त सौंदर्य किसी-किसी महान व्यक्ति के मन पर कौंध जाता है और वह उसकी व्याख्या और मीमांसा करने बैठ जाता है। तब तक वह प्रकाश-रश्मि न जाने किधर चली जाती है। परंतु फिर भी अभिव्यक्ति में जितनी स्पष्टता और सार्वभौमिकता रहती है उतनी ही महत्ता उस सत्य की समझना चाहिये। जो सत्य जितने अधिक काल तक पुनः मूल्य स्थिरीकरण तथा पुनः मूल्यनिरूपण के प्रखर आघातों को सहता रहता है उतना ही उसका स्वरूप निखरता आता है। अन्यथा सर्वदा के लिये वह विलीन हो जाता है। जिस सत्य में जितना ही अधिक सामयिक परिस्थितियों और मनोभावों से मेल खाने का लोच है उतना ही वह सत्य चिरंतन है। धर्म भी सत्य ही है, अतएव धर्म की विशालता उदारता तथा जीवन की विचित्र परिस्थितियों से सामंजस्य पटुता उसकी महत्ता की कसौटी हैं। सत्य एक नहीं अनेक होते हैं। वे अपनी-अपनी शैली में आंशिक सत्य की अभिव्यक्ति हैं। उन सबका पुंजीभूतरूप भी समूचे सत्य का एक अंश ही हो सकता है।

[योगिराज आकाश की ओर देखने लगता है सब स्तब्ध भाव से देखते रहते हैं।]

ये संस्तरणशील 'सत्य' महान सत्य के भीतर वैसे ही चक्कर काटते हैं जैसे, आधुनिक विज्ञान के अनुसार, एक लैंप के भीतर ज्वलंत प्रकाश परिमाणु। मानव-बुद्धि भी पतिंगों की भाँति इन्हीं के चारों ओर घम-घूमकर इन्हीं की व्याख्या के प्रयास में पंगु हो जाती है। पतिंगों का बलि दान जहाँ एक ओर बुद्धि का पराजय घोषित करता है वहाँ कभी-कभी प्रकाशमान दीपक सहस्रों परिभ्रमण शील प्रकाशाणुओं के साथ बुझ भी जाता है। महान सत्य, सत्य-परिवार के साथ, बुद्धि-दृष्टि से ओझल हो जाता है।

रसमूलवादी

आप जिस मानसिक-स्तर से हम लोगों को समझा रहे हैं वहाँ तक हमें पहुँच तो जाने दीजिये। कृपया धीरे-धीरे और समझा-समझाकर आगे बढ़िये। क्या हमारे धर्म में सत्य की अवतारणा हुई है ?

योगिराज

आपके ही क्या, सभी धर्मों में, आंशिक रूप से, उज्ज्वल प्रकाशमान सत्य की अभिव्यक्ति में किसी न किसी तथ्य का स्पष्टीकरण हुआ है। परंतु आपके धर्म केवल कतिपय नक्षत्रों की भाँति महाशून्य के विराट-विग्रह में पृथक्-पृथक् चमक रहे हैं। पथक्-पृथक् आप चाहे जितना प्रकाश करें अज्ञान-रात्रि के अंधकार को आप कदापि दूर नहीं कर सकते। आपको अपनी सत्ता सम्मिलित करके चंद्रमा की भाँति चमकाना चाहिये

रसमूलवादी

क्या हम अपने धर्म को समाप्त कर दें ?

योगिराज

[मुस्कराकर]

बुने हुए वस्त्र के ताने-बाने में क्या धागे का निजी अस्तित्व नहीं

रहता ? मसहरी के डंडों की भाँति एक-दूसरे से बंधे रहने के कारण ही अकड़े रहनेवाले सहयोग से मेरा अभिप्राय नहीं।

ईशवादी

महोदय ! परामर्श तो आप अच्छा देते हैं, परंतु व्यवहार-पथ पर आपका आलोक-स्तम्भ कुछ धुँधला प्रतीत होता है।

योगिराज

जिसकी निजी दृष्टि धूमिल है उसे बाहरी कोई भी बड़ा-से-बड़ा प्रकाश नेत्रवान नहीं बना सकता।

रसमूलवादी

श्रीमान् ! आपके प्रस्ताविक सहयोग के संबंध में मुझे भी कुछ कहना है। यदि मिट्टी का ढेला गिरे हुए सूखे पत्ते से कहे कि वर्षा होने पर मेरे ऊपर आकर क्षत्र बन जाना, और पत्ता कहे कि प्रभंजन के झोंके से बचाने के लिये तुम मेरे ऊपर आ जाना तो क्या यह सहयोग उस समय बेकार नहीं हो जाता जब वर्षा और झंझानिल एक साथ आ जाते हैं।

योगिराज

अवश्य बेकार हो जाता है। वहीं पर बुद्धि की प्रखरता काम देती है। धर्मों की सनातनता और उच्चता की परीक्षा ऐसे ही अवसरों पर होती है जहाँ उनके ग्रंथि-बंधन परस्पर सहायता के लिये सरलता से संपादित किये जा सकें।

सोहम्वादी

क्या यह कोरी दार्शनिकता नहीं है ?

योगिराज

[मुस्करा कर—व्यंग भाव से]

बड़े आश्चर्य की बात है कि आप ऐसा कहते हैं। दार्शनिकता के ऊँचे तल पर ही तो आपका समूचा धर्म आश्रित है।

ईशवादी

[उपहास करने के भाव से]

योगिराज ! आपने सूखे वृक्ष के सबसे ऊँचे ठूठ पर बैठा हुआ रंगबिरंगा पक्षी देखा है ? शुष्क चिंतना पर बैठा हुआ आपका विचार हमारे लिये वैसे ही अग्राह्य है।

योगिराज

परंतु जब तक ठूठ पर पक्षी बैठा है और वह रंग बिरंगा है यह आप देख रहे हैं तब तक वह अग्राह्य कैसे ? आपकी स्पर्शेंद्रिय उसे न छू सके परंतु नेत्रेंद्रिय तो आनंद ले ही रही है। आप पक्षी की ओर देखते रहें। आपमें स्वतः वह बल उत्पन्न हो जायगा कि आप उस तक क्रम से पहुँच सकें।

रसमूलवादी

मनुष्य चलनी का प्रयोग कितने काल से कर रहा है परंतु वह तत्व की वस्तु हमेशा चालकर फेंक दिया करता है।

योगिराज

[कुछ मुस्करा कर]

परंतु आज आपमें यह बुद्धि कैसे आई कि चोकर चले हुए आटे से अधिक उपयोगी है। यह चलनी के निरंतर प्रयोग ही की देन है। यदि शिशु शीघ्रता से अपना पाठ नहीं समझता तो मूर्ख अध्यापक ही उसे दंड देने

लगता है। जो धर्म अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिये बल प्रयोग आवश्यक समझता वह अधर्म पर टिका है।

रसमूलवादी

तो धर्म प्रचार का दूसरा क्या उपाय है ?

योगिराज

प्रचार का केंद्र अपने को मानना बड़ा भारी भ्रम है। विश्व के मुक्त वायुमंडल में नाना ऊँची-नीची चिंतनायें स्वतः परिभ्रमण किया करती हैं। उनमें स्फूर्ति वेग और ओज उतना ही होता है जितना सत्य का रूप उनमें अंतर्हित रहता है। ये विश्व की सम्पत्ति हैं किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। अतएव निजीपने के सूत्र से इन विचार-पतंगों को पृथक् देखना चाहिये कि आकाश में कितने काल तक टिके रहने का इनमें सामर्थ्य है। इन्हें अपनी स्वाभाविक उड़ान में लड़ते और गुथते देखकर प्रसन्न होना चाहिये। किसी पतंग विशेष से ममत्व का लगाव न होने के कारण किसी के भी विजय-पराजय से आपको सुख दुख न होगा। उड़ायक की उँगलियों की कलाबाजी के अभाव में इनकी निजी शक्ति का भी उचित परिचय मिल जायगा। बस ! मेरी समझ में धर्म प्रचारक का यही तटस्थ रूप होना चाहिये।

रसमूलवादी

फिर भी, महाशय ! बिना डोर की पतंग आकाश में कहाँ तक टिक सकती है ?

योगिराज

जितनी ही अधिक अपार्थिविकता उसमें होगी, उतना ही अधिक उसका गगन विहार संभव है।

ईशवादी

योगिराज ! इतने अनासक्ति-भाव में ईर्ष्या का क्या स्थान रह जाता है ?

योगिराज

उन्नति के मैदान में असाधारण दौड़ की फिसलन को ईर्ष्या कहते हैं। जो द्वैत भाव समक्ष रखकर दूसरे से आगे निकल जाना चाहेगा उसे कभी-कभी रपट कर गिरने के लिये भी प्रस्तुत रहना पड़ता है।

सोहम्वादी

गुरुवर ! आपके कथित अनासक्ति भाव के मूल में विषय ज्ञान-शून्यता भी हो सकती है। यदि विषयी और विषय में परस्पर अभिज्ञता है तो कौन पहले किसे त्यागता है, कृपापूर्वक यह भी समझा दीजिये।

योगिराज

पावस भर पृथ्वी और जल आलिंगित रहते हैं। लोग कहते हैं कि जल पंकिल है। परंतु शरद की निर्मलता के लिये कौन पहले त्याग का प्रस्ताव करता है यह किसे सुनाई देता है। विषय और विषयी में पहली ठोकर कौन देता है यह कौन जानता है। संसार की आसक्ति और विरक्ति का यही रहस्य है।

ईशवादी

[भक्ति भावना के साथ]

कदाचित् इसी अनासक्ति के भीतर विश्व के प्रति बड़ी भारी आसक्ति और अपार प्रेम छिपा है।

योगिराज

अवश्य। अब आप लोग सोचिये कि परस्पर घात-प्रतिघात करने वाली आपकी वृत्तियाँ कितनी अधार्मिक हैं। दैवी मुद्रिका पिता ने

किसको दी, एक मुद्रिका से तीन किस प्रकार हो गई, किसकी मुद्रिका असली और किसकी बाद की गढ़ी हुई थी—ये सारे विवाद जलते हुए शव की चिराइँध से अधिक आकर्षक नहीं। मैं तो यह कहूँगा कि आप सब के समस्त धार्मिक सिद्धांत और वाद आज की दुनिया के समक्ष चढ़े हुए दिन तक जलने वाले लैंपों की भाँति हतप्रभ और निस्तेज हैं।

[तीनों श्रोता कसमसाहट के साथ निश्वास लेते हैं, और फिर श्रद्धा से सुनने लगते हैं।]

प्यारे मित्रो ! आपके समक्ष पृथ्वी का यह निर्लज्ज भाग भी है जिसे ऊसर कहते हैं और जिसकी ओर आकाश को मनमाने ढंग से घूरते रहने की स्वतंत्रता है, और पृथ्वी का वह भाग भी है जिसमें लज्जा की तरंग इतनी वेगवती है कि उस प्रदेश को छिपाने के लिये सारे विग्रह को छेद कर वनस्पति-संसार खड़ा कर दिया गया है। आप लोगों को जो उदाहरण रुचिकर हो अपनाइए। मुझे अब अधिक कुछ नहीं कहना है।

[इतना कहते-कहते योगिराज उठकर चल देता है। पीछे मुड़ कर देखता भी नहीं। तीनों श्रोता भी उठकर मौन भाव में, थोड़ी दूर तक साथ-साथ चलते हैं और फिर पृथक्-पृथक् मार्ग पर चल देते हैं।]

(पटक्षेप)

समाप्त